

शिक्षक-दिवस, १९७३

अस्तित्व की खोज

विद्यालय-उत्पन्न विद्यार्थी
अनुसन्धान-परक कार्य प्रियदर्शी

अखिल



सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बीकानेर

की खोज

५

सम्पादक
शिवरत्न आनवी
पुरुषोत्तमलाल तिवारी

© मिला विभाग रायस्थान, बीकानेर
 शिक्षा विभाग रायस्थान, बीकानेर
 के लिए
 पूर्ण प्रकाशन मंदिर, बीकानेर-३३४००१
 द्वारा प्रकाशित

•

मूल्य : पाँच रुपये वषरहत्तर पैसे मात्र
 संस्करण : १९७३

•

विकास बार्टी प्रिंटर्स, गान्धिरा, दिल्ली-१२००१
 द्वारा
 पूर्ण प्रकाशन मंदिर, दिल्ली का चोकर, बीकानेर
 के लिए मुद्रित

ASTITWA KEE KHOJ
 Purushotam Lal Tiwari

Edited By
 (VIVIDH)

Shiv Ratan Thakur,
 Price Rs. 5.75

आमुख

राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में शिक्षक की भूमिका निर्विवाद है। समाज शिक्षक के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने की दृष्टि से प्रतिवर्ष शिक्षक-दिवस का आयोजन करता है।

शिक्षा विभाग, राजस्थान इस अवसर पर शिक्षकों का सम्मान कर उन्हें राज्य स्तर पर पुरस्कृत करता है और उनके कार्यकारी जीवन के सृजनशील क्षणों को सकलनों के रूप में प्रकाशित करता है।

इन संकलनों में शिक्षकों की क्रियाशील अनुभूतियाँ, साहित्य-सर्जना के प्रसिद्ध भारतीय प्रवाह में उनकी संवेदनशीलता तथा उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक समकालीनता के स्वर मुखरित होते हैं और उन्हें यहाँ एकसम रूप में देखा और पढ़ा जा सकता है।

सन् १९६७ से विभागीय प्रवर्तन द्वारा सृजनशील शिक्षकों की रचनाओं के प्रकाशन का जो उपक्रम एक संग्रह के प्रकाशन से भारम्भ किया गया था, वह अब प्रतिवर्ष पाँच प्रकाशनों की सीमा तक पहुँचा है। प्रसन्नता की बात है कि भारत-भर में इस मनुष्य प्रकाशन-योजना का स्वागत हुआ है और इससे सृजनशील शिक्षकों की अभिरूचियों की प्रकटता होने की प्रेरणा मिली है।

सन् १९७२ तक इस प्रकाशन-क्रम में बार्दीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और इस माला में इस वर्ष में पाँच प्रकाशन और सम्मिलित किए जा रहे हैं

- | | |
|--------------------------|--------------------------|
| १. लिलितलता गुलमोहर | (बहानों-संग्रह) |
| २. धूप के पनेरू | (शक्ति-संग्रह) |
| ३. रेजगारी का रोजगार | (रंगमंचीय एकांकी-संग्रह) |
| ४. अस्तित्व की खोज | (विविध रचना-संग्रह) |
| ५. जूना बेनी : जुना बेनी | (राजस्थानी रचना-संग्रह) |

राजस्थान के उत्साही प्रकाशकों ने इस योजना में धारम्भ से

२०११-१२ के लिए भारत सरकार द्वारा तैयार किया गया है।

धारा है, निम्न प्रकाशनों की शर्तों में प्रकाशन भी लोकप्रिय
होगे और मृत्युश्रीम विप्लव समाजिक संस्था में प्रकाशनों
के सहयोगी बनेंगे।

विप्लव-संस्था, १९७३

२० वि० कृमट
निदेशक

शिक्षक-दिवस प्रकाशन-योजना के इस सातवें वर्ष में राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों का विविध रचना-संकलन 'प्रतिबन्ध की खोज' नाम से प्रस्तुत है।

जीवन के विचारगमक क्षण, अनुभूति के क्षण, टीस और खीझ में विस्मयमय सुखों के क्षण अपने-को किसी रीतिबद्ध ढाँचे में बाँध-बंधकर ही अभिव्यक्त करें, यह जरूरी नहीं। ढाँचे और सीधे में बाँधकर बान को बतियाना सायास ही संभव हो पाता है।

इस संकलन में भगवायस अभिव्यक्तियाँ भी हैं और सायास कृतियाँ भी। इसमें जहाँ मुक्त संतों के लेख हैं, वहाँ तड़ित भाव से फूट पड़ी विचार-कलिकाएँ भी हैं। दृष्टा का अनुभव और प्रगत्य भाव से की गई टिप्पणियाँ भी हैं। वे सब रचनाएँ निबन्ध, हास्य और व्यंग्य, डायरी, यात्रा, स्मरण-रेखाचित्र जैसे साधनों में संकलित करके रखी गई हैं, यद्यपि वेता वर्गीकरण मात्र सुविधा की दृष्टि से किया गया है।

सम्पादकों की सेवा है तो इतना-मा टि निबन्धों में गतिशील समसामयिक जीवन की ज्वलन्त समस्याएँ अधिक नहीं समेटी जा सकी हैं। डायरी, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, फीचर जैसी विधाओं या रीतियों में सामग्री कहीं भ्रष्टातिष्ठता और कहीं अनुपलब्ध रही हैं। धनले प्रकाशन में इन पक्षों पर हमारे लेखक दत्तशील होते ही।

बाकी, यह जो ग्यास बन पाया है उसमें परिश्रम की व्यापकता तो है ही। हम तो लेखक की बात के भास्वादक ही होंगे, अधि-से-अधि उनसे सजीवक या समीक्षक भी।

जिनके सहभागित्व से यह संकलन रूपायित हो पाया है, उन सबकी प्रतिभा में विस्वास के साथ, पाठकों की सेवा में यह प्रकारान सादर प्रस्तुत है।

बीकानेर :

शिक्षक-दिवस, १९७३

—सम्पादक



निबन्ध

श्याम सुन्दर व्यास	प्रस्ताव की खोज	१३
शमा चतुर्वेदी	संवाद की कलाश	१५
सिरानुद्दीन 'सिपाय'	उफ़ ! कितना धीर !	१८
मानन्दबोशल सक्सेना	नसीहत :	
	बिस्मि की गड़, किमी की महारा	२०
विश्वेश्वर शर्मा	धार्मिक सामर्थ्य का भूत : परमार्थ	२४
काशीलाल शर्मा	जीवन-सौन्दर्य	२७
देवप्रकाश बौदिक	हँसने वाले दीर्घायु होते हैं	२९
हेमप्रभा जोशी	कोई क्या बहेगा !	३२
विद्वन्नाथ पाण्डेय 'शणव'	विचार पर विचार	३५
बलन्तीलाल महारमा	सड़क की धूलें पुरान	३९
राधाकृष्ण शास्त्री	गडहानी लोकगीतों में सैन्य-भावना	४४
धीनन्दन चतुर्वेदी	मानव राष्ट्र की भाषाओं में भाषात्मक	
	एकता के स्वर	५०
गुलाबचन्द राव	देग बबीरा रोना	५५
प्रेमपाल शर्मा 'शकर पत्र'	साहित्य की परिचया और मेरा देश	६०

हायरी

गोपाल शर्मा मुद्गल	एक दिन की हायरी	६१
मोपेराचन्द जानी	हायरी के पत्ते	६८

यात्रा

धीराम शर्मा	भनगा मंदिर की यात्रा	७१
हुनासचन्द्र जोशी	जीवन के चार दिन देर दे	७५

सुलतानसिंह भोदारा	कश्मीर की यात्रा और हम	८१
	बारह दिन का भ्रमण और पाँच पड़ाव	८५
राजेन्द्र प्रसाद सिंह ठांगी	बदरी केदार से मगूरी	८६
रमेश गर्ग	जीवन यात्रा का कोलाहल	९५

संस्मरण तथा रेखाचित्र

वीणा गुप्ता	सम्पत्ता के ठेकेदार	१०३
कुन्दनसिंह सजल	काश, फिर मिल जाय, शराबत का वह अधिकार !	१०६
रमेश गर्ग	एक चित्र की कहानी : हकीकत की जुबानी	११०

हास्य तथा व्यंग

प्रोम चरोड़ा	बू मे राड़ा भादमी	११७
कुशल ठारवानी	मुक्त	१२०
	दाड़ी	१२३
मरनी राउटेस	सातियाँ	१२६
रघुनाथ 'चित्रेश'	पाने से बुझावा	१३०
विद्वत्भरप्रसाद तर्मा 'विद्यार्थी'	कूबड़ी भरू	१३५
बमशील मुदामा	भेजा-मथाण	१३८
हरमोविन्द गुप्ता	मस्बूति का नया मायाम	१४१
	लेशक परिचय	१४४



निबन्ध



अस्तित्व की खोज

□

दयामुन्दर व्यास

सागर और बूंद का सहवास आनंद की चरम परिणति पर था। बूंद स्वयं सागर होने जा रही थी। किन्तु सहसा बूंद ने अपने अस्तित्व की कल्पना की। विचार-कल्पना के साथ-ही-साथ बूंद अपने महान्-चिरंतन आश्चर्य-स्थल से विलग हो गयी और अस्तित्व की खोज में चल पड़ी।

सरिता, गिरि की गहन घाटियों को पार कर वह घागे बढ़ती गयी और अस्तित्व का सम्मोह पोषित होता रहा। बालत्रमेण जीवन-प्रतिष्ठा एवं अमरता की भूख बढ़ी। अपनी मृष्टि-संरचना की कल्पना साकार हो उठी। चारी और नम्र, भौतिक मुखों के ढेर के ढेर दृष्टि में आने लगे। पार्थिव मन भौतिक रसास्वादन के आनंद में डूब गया। मुख-उपभोग बढ़े। ये बढ़े आनंददायी थे, पर स्थिर न थे। इन्हें स्थिर करने का बोध हुआ, पर मन पंगु था, असमर्थ था अतः ऐसा हो न सका। पलट, दुःख-ईर्ष्य बढ़ा। शनैः शनैः सजीव आनंद तिरोहित हो चला, जीवन में और निराशा का संवरण हुआ। अस्तित्व के प्रति अपेक्षा भाव लगे। बूंद ने अपने-आपको कोसना शुरू किया। सम्पूर्ण जीवन समर्थ का घर बन गया और बूंद छटपटाने लगी।

दूर-दूर तक देखा। एक सरिता अपनी अगणित जलधाराओं में लिपटी प्रफुल्लता से बह रही है। उसके जीवन में उल्लास है, अमृतत्व है, आशा की अमर भावना है।

बूंद दौड़कर निकट आयी और बोली—वह ! तुम्हारे असीम आनंद का क्या रहस्य है ?

उत्तर मिला—समर्पण मेरा जीवन है।

बूंद ने विनम्र अभ्यर्चना की—वह ! क्या मुझे भी यह गहन आनंद दोगी ?

सरिता ने हँसकर उत्तर दिया—तुम्हारी अस्तित्व-भावना ने तुम्हें एकाकी बनाया है।

बुंद ने उठें तो होकर कहा—बहन ! मैं इसकी विपदा यदि देख चुकी हूँ। यह तुम्हारा दोर चिरोरी आसना है।

अग्नि की सी—हाँ, बहन ! मुझ परमात्मा जगत् का मेरे बहुत दूर का निरीक्षी है। दुःख सर्व काय को समस्त बहूँगा मेरे नीरस घड़े को सब भूतना सहन एवं समन नहीं।

बुंद परमात्मा की, विशिष्ट की। उसका मन मान, बाल्य था। वह परमात्मा की आँखें पूरा भर कर ही आती थीं। देखा कि उसका निर्भर जीवन की आगीम सादृश्य विवेक पर बहुत रहा है। यदि मैं विपदा, दुःख, वन में निरपेक्षता, निरसमता उसका परमात्मा पूरा स्थापित कर रही है। आत्मा की अनुपम शक्ति देव बुंद ने कृष्ण स्वर में कहा—आता ! क्या मुझ आत्मा रहस्य की सचोती ?

निर्भर आत्मा—बहन ! जीवन का अग्निमय भूत भूत है। दुःख चाहो तो इसे रहस्य मान सकते हो।

बुंद निराश थी। वह अपने अग्निमय का पुनः पुनः अधिष्ठान करना चाह रही थी। वह हल्का हँसि कैने ! उसका यह परमात्मा मूर्ख एवं अविज्ञानी था। इसे अग्निमय बनना बटोर मानना थी। मन ही उड़ा, नेत्र उलटता था। अग्निमय आत्मा से भीतर गये, प्राण टूटित हो गया। अन्तर-बोलावून उसे सागर की ओर लौट जाने को बार-बार कह रहा था। वह दोही सागर के तट पर आयी। सागर के महान् अग्निमय को देव कह भूत सभी उसे कहा विनम्र निवेदन करना था। थोड़े क्षण टहरी। मन पान्न हुआ। करवट हो बानी—हे परम देवता ! मैं चित्तोपिमा बुंद हूँ। मैंने पूरे मेरे गहवाग के मुन्दर माने देने हैं। किन्तु आज दुःख में दूब रही हूँ, सपर्यं मुझे घेरे हैं। मुझे कारण दो, आश्रय दो।

तत्काल बटोर उत्तर दिया—तुम्हारे दुःख संसारजन्य हैं, इन्हें छोड़ देने दो। जाओ, समष्टि में व्यष्टि सीन हो जाय, तब आना।

बुंद की आँखें खुलीं। वह लौट गयी और अपने अस्तित्व को कण-कण में नेरसेविलगी।

संवाद की तलाश

□

क्षमा चतुर्वेदी

शिक्षण जगत् में बढ़ रही अनेक समस्याओं पर धीरे-धीरे गंभीरता से विचार किया जाय तो प्रमुख कारण यही दृष्टिबोचर होता है कि कहीं कुछ टूट गया है। शिक्षक जो आज बेतनभोगी इन्फोर्माचार्य के रूप में उभरता हुआ वर्ग है, वह मात्र छात्रों को रटनू शब्दावली में विताओ को उल्टा उगल देने में ही और छात्रों को बिना किसी तर्क के उसे स्वीकार करने को ही अनुशासन और ज्ञान-प्राप्ति की एकमात्र मुद्रा समझता है। उसके सामने प्रश्न पूछ लेना या किसी तर्क पर भी उतर घाना वह अपनी सोहीन समझता है। एक बाल और जो नव-वीडिक वर्ग में उभर रहों है, वह यह है कि वह अन्य किसी प्रकार के नैतिक मूल्य को उपयोगी भी नहीं समझता है। शिक्षा का उद्देश्य छात्र का सर्वाङ्गीण विकास है या उसकी नैतिक कृतियों का उद्घाटन होना है, या लोकतांत्रिक जीवन-पद्धति के मद्दुरूप नागरिक तैयार करना है, यह सब कुछ विताओ बात रह गई है। शिक्षक मात्र सरकारी कर्मचारी रह गया है—जोकि शिक्षण समस्याओं को उसी तरह खलाता जा रहा है जैसे नगरपालिका या पुलिस थाना या अन्य कोई सरकारी दफ्तर चलाता है।

और छात्र समुदाय ! वह भाव यह मानकर चलता है कि उसका जीवन के बहुत सख से कोई सम्बन्ध नहीं है। जब सारा समाज ही पनोन्मुख है तब मुझे ही प्रगति से क्या लेना है। वह शिक्षण संस्थानों को मात्र मनोरंजन का केन्द्र मान बैठा है। शिक्षक का उसकी निगाहों में कहीं कोई सम्मान नहीं रह गया है। वह एक घनार्म घड़ी है जिसका नाम कहीं न कहीं चलता ही है।

आज अगर कहीं पर भी बहल होनी है तो छात्र समुदाय सारा दोष अपने शिक्षक के ऊपर रखकर बरी हो जाते हैं तो दूसरी ओर शिक्षक छात्र समुदाय को ही अनुशासनहीन तथा असहज की सजा देकर अपने-आपको मुक्त समझते हैं।

प्रश्न यही समाप्त नहीं हो जाता है। इस समस्या का मूल कारण यही है कि आज शिक्षण संस्थाएँ भी सरकारी कार्यालय या कारखाने की शक्ल में

का साक्षात् न बसा जाता है, जिससे कि वह न उठाने सफल रहता है। परिणामतः इस तरह फिर तृणात्मक होकर बिपटन की ओर मुड़ जाती है। यही कारण है कि शिक्षण संस्थाएँ हड़ताल, घेराव, धामबनी का केन्द्र बनती जाती आ रही हैं। मामूली-से-मामूली बातें जितना समाधान बातचीत से हो सकता है, उनके समाधान भी संघर्षों में होने लग गए हैं और शिक्षक वर्ग उदासीनता से यह सब देख रहा है। वह कहीं पर इन छात्रों की किसी भी समस्या में शरीक नहीं हो पाता है। और तब छात्र अपने ही शिक्षक को वह सम्मान नहीं देता है जिसका कि वह हकदार है।

इसलिए आवश्यक है कि आज इन सम्बन्धों पर गंभीरता से विचार किया जाए। क्या कारण है कि आज छात्र समुदाय शिक्षकों के प्रभाव से मुक्त होकर प्रभावहीन, निष्क्रिय, अराजक वातावरण में संलग्न हो गया है। संवाद की तलाश इसलिए आज जरूरी है। छात्र समुदाय और उसके शिक्षक के बीच में संवाद को पुनः गति देनी होगी तभी शिक्षण संस्थाओं के स्वरूप में परिवर्तन आ सकता है और वे प्राशाओं के अनुरूप गतिशील हो सकती हैं।

प्रत्येक शौरवर्ण वाले को ध्येय ही समझते हैं । जो उनके साथ हुआ जाने दीजिये, वस इतना समझ लीजिये कि बड़ी मुश्किल से तीन मास ही भारत रह सके जबकि उन्हें एक वर्ष रहना था ।

आप चाहे जो भी हों, यदि आप भारत में रहते हैं तो शोर से मली-माँति परिचित होंगे । यदि डॉक्टर हैं तो मरीजों के शोर से आप यदि खुद मरीज हो जायें तो आश्चर्य चकित होने की आवश्यकता नहीं । यदि इंजीनियर हैं तो आपको मशीनों और आदमी के शोर के मुकाबले का अनुभव होगा ही । यदि आप अध्यापक हैं तो ऐस्यों और एनास्तिन आप वैसे ही अपने-आप रखते होंगे जैसे हिप्पी अपने पास 'हृषिक' रखते हैं । अध्यापक के लिए तो शोर विद्यालय में पहुँचने के साथ ही शुरू हो जाता है । उपस्थिति-भंगन के समय ऐसा लगता है जैसे आप नष्टा में न होकर सज्जीमण्डी में हैं ।

योग शांति के लिए मंदिर जाते हैं । दुर्भाग्य से मेरे मकान के पास ही एक चर्च, एक मस्जिद व एक मन्दिर है । आप सोचते होंगे कि मैं बड़ा नास्तिक हूँ कि भगवान के तीन-तीन घर मेरे घर के पास हैं और इसे मैं दुर्भाग्य कहता हूँ । किन्तु यदि आप मेरे घर कभी भी तथारीक जायें तो आप भी मेरे से सहानु-भूति करेंगे । सबेरे चार बजे ही मुल्ला की घड़ान से नींद में जो शॉक लगता है उसे वस कुछ मल ठूलिये—ऐसा लगता है किसी ने मुझे आसमान से नीचे पटक दिया हो । फिर शीघ्र ही मन्दिर में घंटे बजने शुरू हो जाते हैं । घंटे इतने जोर से ब इतनी देर तक बजते हैं कि ऐसा लगता है या तो ईश्वर बहुरा है या फिर घंटे सुनकर बहुरा ध्वंस हो गया है । और जब कहीं भलण्ड कीर्तन होता है तो—खुदा खँर करे—मुझे घर छोड़कर बन-भ्रमण करना पड़ता है । वैसे मैं मन्दिर नहीं जाता पर कभी-कभी जाता हूँ और प्रार्थना करता हूँ—भगवान् भलण्ड कीर्तन के प्रोग्राम को कैन्सिल कर दो या फिर कम-से-कम पोस्टपोन तो कर ही दो । चर्च की घंटिया भी सबेरे घाठ बजे बजने लगती हैं ।

मेरे एक मित्र हैं । मैं उन्हें बहुत भाव्यभाषी मानता हूँ क्योंकि वे कुछ बहुरे हैं । वे अपने-आपको तब तक दुखी मानते थे जब तक उन्होंने 'हियरिंग एड' नहीं खरीदी थी । एक दिन 'हियरिंग एड' लगाकर वह मेरे घर आये तो मंदिर के घंटों की आवाज सुनकर उन्होंने तुरन्त 'हियरिंग एड' हटा ली और चैन से बैठ गये । अब वह 'हियरिंग एड' का कम ही प्रयोग करते हैं । परिवार नियोजन के शब्दों में उनके परिवार में 'बच्चे टावर बच्चे दुख है' क्योंकि उनके पाँच लड़कियाँ तथा तीन लड़के हैं । किन्तु उनके इस बहुरेपन ने उन्हें सुखी बना दिया । जब बच्चे लड़ते-झगड़ते हैं तो वे सुरंत अपनी 'हियरिंग एड' हटा लेते हैं । इस प्रकार जब उनकी पत्नी उनके रात को देर से सोटने के कारण उन पर बरसती है तो भी उनका 'हियरिंग एड' उनकी जेब में होता है ।

प्रत्येक गौरवर्ण वाले को धमंज ही समझते हैं। जो उनके साथ हुआ जाने दीजिये, वस इतना समझ लीजिये कि बड़ी मुश्किल से तीन मास ही भारत रह सके जबकि उन्हें एक वर्ष रहना था।

आप चाहे जो भी हो, यदि आप भारत में रहते हैं तो शोर से मनी-माँति परिचित होंगे। यदि डॉक्टर है तो मरीजों के शोर से आप यदि खुद मरीज हो जायें तो आश्चर्य चकित होने की आवश्यकता नहीं। यदि इंजीनियर हैं तो आपको मशीनों और आदमी के शोर के मुकाबले का अनुभव होगा ही। यदि आप अध्यापक हैं तो ऐसी और एनासिन आप वैसे ही अपने-आप रखते होंगे जैसे हिप्पी अपने पास 'हिस' रखते हैं। अध्यापक के लिए तो शोर विद्यालय में पहुँचने के साथ ही शुरू हो जाता है। उपस्थिति-संकन के समय ऐसा लगता है जैसे आप बधा में न होकर सब्जीमण्डी में हैं।

लोग शांति के लिए मंदिर जाते हैं। दुर्भाग्य से मेरे मकान के पास ही एक चर्च, एक मस्जिद व एक मन्दिर है। आप सोचते होंगे कि मैं बड़ा नास्तिक हूँ कि मकान के तीन-तीन घर मेरे घर के पास हैं और इतने में दुर्भाग्य कहता हूँ कि यदि आप मेरे घर कभी भी तयरीक जायें तो आप भी मेरे से सहानु- करैंगे। सवेरे चार बजे ही मुल्ता की घड़ान से नींद में जो शॉक लगता वस कुछ मन धुँधिये—ऐसा लगता है किसी ने मुझे आसमान से नीचे दिया। फिर शीघ्र ही मन्दिर में घंटे बजने शुरू हो जाते हैं। घंटे इतने तेज़ तक बजते हैं कि ऐसा लगता है या तो ईश्वर बहरा है या बहुत भ्रमण हो गया है। और जब कहीं भ्रमण कीर्तन खंड करे—मुझे घर छोड़कर घन-भ्रमण करना पड़ता है। हाता पर कभी-कभी जाता हूँ और प्रार्थना करता हूँ—मरदान को केमिन कर दो या फिर कम-से-कम पोस्टपोन तो की घंटियां भी सवेरे घाठ बजे बजने लगनी है।

मित्र हैं। मैं उन्हें बहुत भाग्यशाली मानता हूँ क्योंकि वे कुछ भी तब तक दुखी या बसे थे जब तक उन्होंने 'हियरिंग' की थी। एक दिन 'हियरिंग एड' लगाकर वह मेरे घर आये तो पावाड़ सुनकर उन्होंने तुरन्त 'हियरिंग एड' हटा ली और चैन रह 'हियरिंग एड' का कम ही प्रयोग करते हैं। परिवार नियोजन परिवार में 'घणो टावर घणो दुख है' क्योंकि उनके पाँच लीन लड़के हैं। किन्तु उनके इस चहरेपन ने उन्हें मुझी बना दे-भगडले हैं तो वे तुरन्त अपनी 'हियरिंग एड' हटा लेते। उनकी पत्नी उनके रात की देर से लौटने के कारण उन घर में उनका 'हियरिंग एड' उनकी जेब में होता है।

प्रत्येक गौरवर्ण वाले को अंग्रेज ही समझते हैं। जो उनके साम झुका जाने दीजिये, वस इतना समझ लीजिये कि बड़ी मुश्किल से तीन भात ही भारत रह सके जबकि उन्हें एक बर्ष रहना था।

आप चाहे जो भी हों, यदि आप भारत में रहते हैं तो शोर से जलो-माँति परिचित होंगे। यदि डॉक्टर हैं तो मरीजों के शोर से आप यदि खुद मरीज हो जायें तो आश्चर्य चकित होने की आवश्यकता नहीं। यदि इंजीनियर हैं तो आपको मशीनों और आदमी के शोर के मुकाबले का अनुभव होगा ही। यदि आप अध्यापक हैं तो ऐसो और एनासिन आप वैसे ही अपने-आप रखते होंगे जैसे हिप्पी अपने पास 'हमिसा' रखते हैं। अध्यापक के लिए तो शोर विद्यालय में पहुँचने के साथ ही शुरू हो जाता है। उपस्थिति-प्रकन के समय ऐसा लगता है जैसे आप कक्षा में न होकर सन्जीमण्डी में हैं।

लोग शांति के लिए मंदिर जाते हैं। दुर्भाग्य से मेरे मकान के पास ही एक चर्च, एक मस्जिद व एक मन्दिर है। भाग सोचते होंगे कि मैं बड़ा नास्तिक हूँ कि भगवान के तीन-तीन घर मेरे घर के पास है और इसे मैं दुर्भाग्य कहता हूँ। किन्तु यदि भाग मेरे घर कभी भी तसरीफ लाये तो आप भी मेरे से सहानु-भूति करेंगे। सवेरे चार बजे ही मुल्ला की घड़ान से नींद में जो साँक लगता है उसे बस कुछ मत पूछिये—ऐसा लगता है किसी ने मुझे भासमान में नीचे पटक दिया हो। फिर शीघ्र ही मन्दिर में घंटे बजने शुरू हो जाते हैं। घंटे इतने जोर से ब इतनी देर तक बजते हैं कि ऐसा लगता है या तो ईश्वर बहुरा है या फिर घंटे सुनकर बहुरा घबरा हो गया है। और जब वही भ्रष्टाचार कीर्तन होता है तो—छुड़ा खीर करे—मुझे घर छोड़कर बन-भ्रमण करना पड़ता है। जैसे मैं मन्दिर नहीं जाता पर कभी-कभी जाता हूँ और प्रार्थना करता हूँ—भगवान् भ्रष्टाचार कीर्तन के प्रोपाम की बेन्सिल कर दो या फिर कम-से-कम पोस्टपोन तो कर ही दो। चर्च की घंटियाँ भी सवेरे भाठ बजे बजने लगती हैं।

मेरे एक मित्र हैं। मैं उन्हें बहुत माँग्यमाली मानता हूँ क्योंकि वे कुछ बहुरे हैं। वे अपने-आपको ठक तक दुन्नी मानने से जब तक उन्होंने 'हियरिंग एड' नहीं खरीदी थी। एक दिन 'हियरिंग एड' लगाकर वह मेरे घर आये तो मंदिर के घंटों की आवाज सुनकर उन्होंने तुरन्त 'हियरिंग एड' हटा ली और बिन से बैठ गये। अब वह 'हियरिंग एड' का काम ही प्रयोग करते हैं। परिवार नियोजन के सत्रों में उनके परिवार में 'घण्टो टावर घण्टो दुग है' क्योंकि उनके पाँच लड़कियाँ तथा तीन लड़के हैं। किन्तु उनके इस बहुरेपन ने उन्हें सुन्नी बना दिया। जब घन्के लड़के-भगइने हैं तो वे तुरन्त अपनी 'हियरिंग एड' हटा लेते हैं। इस प्रकार जब उनकी पत्नी उनके सान की देर से लौटने के कारण उन पर बरसती है तो भी उनका 'हियरिंग एड' उनकी जेब में होता है।

ओफ़, कितना शोर है !

सिराजूहीन 'सिराज'

घाथुनिक युग को कई संज्ञाएँ दी गई हैं—विज्ञान का युग, मशीन का युग, घाथुनिक युग मेरे विचार में तो घाथुनिक युग को 'शोर का युग' कहा जाना चाहिए। घाज घाघ नहीं भी सचे जाइये, शोर पावेंगे। रेलवे स्टेशन, बग हर्ड, पा यही तक कि विद्यालय भी शोर से मुक्त नहीं। पादवायु देग तो शोर से अत्यन्त पीड़ित हैं। वहाँ घोड़ी भी शाति के लिए गीम यड़ी-मे-वही क्रीमन देने तैयार हैं। मेरे एक प्रिय मित्र ने मुझे बताया कि इंग्लैंड में छोटे-से-छोटे ग में भी वायुयान का शोर गुनाह देता है।

पूर्व को शांति का केन्द्र माना गया है और इसी कारण पादवायु की शोर झुक भी रहा है। पादवायु देगो से शाति के भूमे मोलों का भाग भाने का तात्ता ही लग गया है। जिसी भी विदेशो की यह धारणा। भारतवर्ष शाति का केन्द्र है, पातम से ही दूर होता धुस हो जाती है। मैं अपने एक जर्मन मित्र को लेने पातम पहुँचा तो मुझे भी यह अनुभव हुआ। शोर की दृष्टि से रेलवे स्टेशन और हवाई-मड्डे में कोई भी अन्तर नहीं है। मे मित्र को वहाँ के कस्टम का उन्ही के घन्टों में 'नॉइजी फेओस' (Noise Chaos) बड़ा अजब लगा। खैर, जैसे-तैसे कस्टम से बनीमर होकर बाहर मा तो टैक्सी वालों ने उनका धिराव किया। उन बेचारों पर टैक्सी ड्राइवर एं टूटे जैसे मरे हुए जानवर पर गिड़ टूटते हैं। यदि मैं उनके साथ न होता तो पता नहीं उनका क्या होता। शायद वह जर्मनी वापस ही चले जाते। जर्मन भारत से कहीं अधिक धीरोमिक देश है पर उन्होंने ऐसा शोर वहाँ नहीं पाया मुझे बड़ी रास आ रही थी कि भारत के बारे में वे जाने क्या-क्या सोचेंगे क्योंकि अभी तो 'दिलवाये इश्क' ही हुआ था। खैर, मैं बहुत सारे चक्क्यूहों को तोड़कर उन्हें घर लाने में सफल हुआ हानोंकि मेरे घर तक पहुँचते-पहुँचते उनकी भारत-दर्शन की इच्छा आधी रह गई थी। जैसे ही घर पहुँचा मुहल्ले के सारे बच्चे उनके पीछे लग लिये और लगे 'धपेड-धपेड' चिल्लाने क्योंकि वे तो

प्रत्येक गौरवणें वाले को धन्य हो सम्भले हैं । जो उनके साथ हुमा जाने दीजिये, वस इतना समझ लीजिये कि बड़ी मुश्किल से तीन मास ही भारत रह सके जबकि उन्हें एक वर्ष रहना था ।

आप चाहे जो भी हो, यदि आप भारत में रहते हैं तो घोर से मली-माँति परिचित होंगे । यदि डॉक्टर हैं तो मरीजों के घोर से आप यदि छुद मरीज हो जायें तो धादचनें भक्ति होने की आवश्यकता नहीं । यदि इंजीनियर हैं तो आपको मरीजों घोर धादमी के घोर के मुताबिके का अनुभव होगा ही । यदि आप अध्यापक हैं तो ऐस्त्रो घोर एनालिसिस आप वैसे ही अपने-आप रखते होंगे जैसे हिप्पी अपने पास 'हिसा' रखते हैं । अध्यापक के लिए तो घोर विद्यालय में पहुँचने के साथ ही शुरू हो जाता है । उपरियनि-मंकन के समय ऐसा लगता है जैसे आप बरसा में न होकर सब्जीमण्डी में है ।

लोग शक्ति के लिए मंदिर जाते हैं । दुर्भाग्य से मेरे मकान के पास ही एक चर्च, एक मस्जिद व एक मन्दिर है । आप सोचते होंगे कि मैं बड़ा नास्तिक हूँ कि भगवान के तीन-तीन घर मेरे घर के पास हैं और इसे मैं दुर्भाग्य बहता हूँ । किन्तु यदि आप मेरे घर कभी भी तसरीफ लायें तो आप भी मेरे से सहानु-भूति करेंगे । सबेरे चार बजे ही मुल्ता की ध्वान से नींद में जो गॉक लगता है उसे बस कुछ मत पूछिये—ऐसा लगता है किसी ने मुझे घासमान से नीचे पटक दिया हो । फिर सीधे ही मन्दिर में घटे बजने शुरू हो जाते हैं । घटे इतने जोर से व इतनी देर तक बजते हैं कि ऐसा लगता है या तो ईश्वर बहुरा है या फिर घटे सुनकर बहुरा धक्का हो गया है । घोर जब बहुरा धक्का कीर्तन होता है तो—छुदा खर करे—मुझे घर छोड़कर बन-भ्रमण करना पड़ता है । यंत्रों में मन्दिर नहीं जाता पर कभी-कभी जाता है और प्रार्थना करता हूँ—भगवान् धक्का कीर्तन के प्रोपाम को बेनिम कर दो या फिर कम-से-कम पोस्टपोन तो कर ही दो । चर्च की घटिया भी सबेरे आठ बजे बजने लगती है ।

मेरे एक मित्र हैं । मैं उन्हें बहुत माय्यवादी मानता हूँ क्योंकि वे कुछ गहरे हैं । वे अपने-आपको तब तक दुखी मानते थे जब तक उन्होंने 'हियरिंग एड' नहीं खरीदी थी । एक दिन 'हियरिंग एड' लगाकर वह मेरे घर आये तो मंदिर के घंटों की धावाज सुनकर उन्होंने तुरन्त 'हियरिंग एड' हटा ली और चैन से बैठ गये । अब वह 'हियरिंग एड' का काम ही प्रयोग करते हैं । परिवार नियोजन के शब्दों में उनके परिवार में 'घण्टी टावर घण्टी दुख है' क्योंकि उनके पाँच सड़कियाँ तथा तीन लड़के हैं । किन्तु उनके इस चहरेपन ने उन्हें सुखी बना दिया । जब बच्चे लड़ते-झगड़ते हैं तो वे तुरन्त अपनी 'हियरिंग एड' हटा लेते हैं । इस प्रकार जब उनकी पत्नी उनके रात को देर से लौटने के कारण उन पर बरसती है तो भी उनका 'हियरिंग एड' उनकी जेब में होता है ।

किसी को मर्ज़, किसी को सहारा

□
प्रानन्दकीशल सबसेना

[illegible]

घोर बर्षे का स्वयं के द्वारा मान्यता प्राप्त ममीहृत्त देने का अधिकार अद्वैतमेव
दुर्ग की भाँति दुर्ग प्रतीत होता है।

ममीहृत्त की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आचरण की दृष्टि में इतना
ममीहृत्त देनेवाले पर स्वयं पर कोई प्रभाव नहीं होता। ममीहृत्त बनाई ही दूसरे
के लिए गर्व है। यह तो ममीहृत्त करनेवाले का उत्साह ही समझिये कि वह
जीवन के अन्धे-बुरे सभी अनुभव स्वयं करने दूसरे के हितों के लिए बेचन
ममीहृत्त छोड़े। हमारे दैनिक जीवन में इसके कई उदाहरण देखेंगे जो मिलेंगे जंग
नेता लोग लोग एवं दैवीयमान सुगमपदों में समाये आर्पित करने मंत्र पर
सबे नियम-अंग ही मानाविष्य उदरेय अद्वैतमय जनता अर्थात्त में राष्ट्र-प्रेम,
परिच के उत्पादन व नवनिर्माण की समस्त शक्तें देने का सचने है। सगता है
नेताओं देव व जनता के सम में गुण-पुनरुत्पन्न गुण हुए जा रहे हैं। करोड़ों के
बैर बैरों, गुण की मिली सामीप्यता कोटिप्रा, हजारों की बिजली पृष्ठ देने की
सुविधा, वायु-वातावरण बंदे, मनीषों, माने-रिश्तेदारों के अविष्य बनाने का
सुरक्षित अधिकार आदि उनमें राष्ट्र-प्रेम, देश घोर जनता के लिए उनके हृदय
में पाने दई तथा उनके उत्साह परितः का प्रतीक हो तो है। बेचारे इसी दई
की जनता में ममीहृत्त के रूप में बोलने नहीं पाते।

धर्मोद्देश्य वेचारे अमान्यता प्राप्ति के माया-मोह का अन्धता बाढने के
लिए अपनी समस्तता में जनता के मित्या माया-मोह के प्रति अनासक्ति पैदा
करते हैं। उनके सुगमपद पर ध्यान लेख की आत्मा देखते ही बनती है जिसे
देखकर दुष्ट प्राणी अन्ध हो नमस्कृत हो जाते हैं। वेचारे उन्हें अपनी समस्तता
को सधुर तथा समस्त बनाने के लिए नियम-अंग मानविष्य, उत्तम, पौष्टिक, दुर्ग-
निमित्त अथवा दुष्ट देवी धी में बनी वस्तुएँ एवं फलहार ही रास घाता है।
चढ़ावा, लोग अथवा धर्मार्थ सचिन द्रव्य ग्रहण करने लगे वे निरुत्साह उत्पन्न हो
करते हैं, जिनमें संगार के प्राणियों के अन्धता में योग दे लगे घोर दुःख घात की
उन्हें इसी चिन्ता है कि सामूहिक रूप से स्त्री-पुरुषों के समूह को एकत्रित कर
व व्यक्तिगत रूप से चले-बेली बनाकर अपने उपदेश देने के अर्थव्य का निर्वाह
करके पौष्टिक भोजन को हजम करते हैं।

बड़ी उम्रवालों की अपने से छोटी को दी जानेवाली ममीहृत्त में वे सभी
बातें शामिल होती हैं जिन्हें वे स्वयं अपने द्वारा करना तो अनुचित नहीं मानते
अथवा इसे अपनी आदत का अंग बताकर मजबूरी मानते हैं किन्तु उसकी बुराई
से भिन्न होने से दूसरों को, विशेष रूप से अपने से छोटी को उससे बचने के लिए
प्रेरित अवश्य ही करेंगे। बीबी-सिखरेट-शराब का सेवन करनेवाला अथवा किसी
घोर दुर्घटनाओं में लिप्त व्यक्ति इन सबसे स्वयं का बचाव न करके भी दूसरों को,
विशेष रूप से अपने से छोटे प्रियजनों को इससे बचाने के लिए अवश्य उपदेश

देगा। भूत नहीं बोलने की ममीह्व देनाया जालि एवं भूत मे पादेव नही करेगा। गोप और गानव को दुगानी सावक बाजिनाया एवं दुमका तितार बना रहगा है। ममीह्व करनेवाले निम्नावदे प्रीतिता जालि एवं एवं के धावना को उभा प्रसार नजम्माइ करे है जैसे कीनह अपने नीचे धेरेग ही रगाता है। इमीनिप तो इगरी बिजेगा का बगाव गोमसमी तुामीगा ने भी गो गह बहाव दिया है—'नर उदेस पुता बहुरे'। ममीह्व करने के इस मंत्रमन में मताव का छोटा-बहा, रसी-गुण, धोमी-मोमी कोई धमूता नहीं बचा है। बिजानो का तो गह भाग मने है; फिर प्रचारक, मेगक, कवि, कहानीकार, धम्मपन, भावककर्माओं का गो गहारा ही ममीह्व है। ममीह्व का सठारा जिनो बिना हमकी रोटी-रोटी की बजाया ही नहीं की जा सकती।

ममीह्व का एक विशेष मनोवैज्ञानिक दृष्टि और भी निश्चय है। वह है नसीह्व करने के लिए धनवासी गई विभिन्न मुद्रा व भाव। धान सौम्यभाव, गोप, गोम, धनुनय-विनय व सागुविपन ममी का धनवाकर ममीह्व धना एक निश्चित एवं धर्मित प्रभाव योग पर छोड़नी है। ममीह्व करनेवाला व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को मुननेवाने की धर्मता अधिक गहरापूर्ण मानता है। उनके चेहरे पर यङ्गन की गरिमा एवं योग्यतागूक भाव स्पष्टन गरितित होना है। यदि कोई धार्मिक उद्बोधन दिया जा रहा हो तो वक्ता के मुगमण्डल पर सौम्यभाव दिखाई पड़ेगा। नेताओं के भाषण में धारोह-धवरोह के साथ-साथ धापकी अनेक भाव उनके चेहरे पर देखने को मिल सकते हैं। अपने राजनैतिक विरोधियों की खबर सेते समय उनकी त्रोपपूर्ण भंगिमा, धोताओं की नासमभी पर तरस छाते हुए विरोधियों के ध्वष के भोते में धाने के लिए दी गई स्त्रीमरी भीठी फटकाट, राजनैतिक घटनाओं को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते समय विश्वस्तताजनक साधिकार बिद्वता की अलक निस्सन्देह एक ही रूप में बहुरूप होता है। अपनी बात को सत्य एवं विश्वसनीय बनाने के लिए सत्यवादी हरिदचन्द्र का अभिनय तथा अपनी बात मनवाने के लिए का गई धनुनय चिरोरी के अवसर की कुटिलता के आवरण में छिपी भासूमियत की मुद्रा भी देखते ही बनती है।

बड़ी उम्र के लोगों के द्वारा अपने से छोटी को दी गई सीख में उनका सौहार्द व स्नेह का भाव छिपा होता है। उनके हृदय में एक भारका बनी रहती है कि यदि वे अपने से छोटी को सावधान न करें तो सम्भवतः उन्हें सही शिक्षा मिल ही नहीं सकेगी। प्रायः बड़ी भागु के वयस्क लड़के-लड़कियों को उनके माता-पिता व अन्य बड़े-बूढ़ों के द्वारा दी गई नसीह्व हास्यवास्पद व घटपटी-सी भी प्रतीत होती है। भकेले यात्रा पर जाते समय बड़ी उम्र के लड़के-लड़कियों को सदी-ममी के मौसम का ध्यान रखने को कहना, उनकी लापरवाही का वर्णन करते

हम अपनी दुःख-मोक्ष की मूर्च्छा मध्य पर देने रहने के लिए साधक करना, यात्रा के उद्देश्य की मर्ना के लिए बड़ा-बड़ा करना साधक होगा हम बात की कई बार बहुरी भी उन्हें मर्ना मर्नी होगा । मर्ना है मर्नी-मर्नी करनेवाले को दूसरे की बुद्धि पर तो प्रयोग होगा हो नहीं । बड़ी अन्दी-अन्दी में यदि उन्हें कोई बात याद नहीं रही और बाद में उसका स्मरण आया तो उन्हें हम बात का बड़ा मोह होगा कि प्रमुख बात तो बहुरी के भूय ही मर्ने । यह मूर्च्छा एक पर साधक हमारी याद दिनाकर ही उन्हें मर्ना होगा । गुनाओं के प्रयोग पर हर प्रयोगी व उसके समर्थक मर्ना-मर्नी को प्रमाणित प्रयोग साधक रूप में अपनी प्रयोगी मित्र करने के लिए प्रयोग प्रयोग करने का प्रयोग करते हैं । साधक की मर्ना के बाद उनके ही द्वारा मर्ना ही मर्नी है मर्ना ; मर्ना-मर्ना प्रयोगों के द्वारा मर्ना प्रयोग में मर्ना न जानता है कि प्रयोग प्रयोगी को प्रयोग उनके प्रयोग की प्रयोग मर्ना-मर्ना, देन के प्रयोग के लिए उनकी प्रयोगी को प्रयोग करने के मर्नी मर्नी व उनकी मर्ना मर्नी की प्रयोगी प्रयोगी प्रयोग पर पूर्ण प्रयोग होने बिना मर्नी नहीं होगा । ऐसा प्रयोग होता है जैसे मर्ना उनके बाद में, देन की मर्ना-मर्नी व प्रयोग-मर्नी के प्रयोग में पूर्ण-मर्ना प्रयोग ही हो और यदि वे उसे मर्नी प्रयोग मर्नी मर्नी तो वह प्रयोग उचित-मर्नी का निर्णय कर जाने में मर्नी प्रयोग रहेगा ।

मर्ना, नगीहन का साधक हर मर्ना, हर परिस्थिति में मर्नी मिलेगा, देने देने में कोई मर्ना नहीं मर्नी मर्नी और मर्ना प्रयोग होने पर इसका प्रयोग वे कोई मर्नी मर्ना ।

मुनेवाला यदि मर्ना-मर्ना मर्ना मर्नी मर्नी की बात मुने, उत्तम मर्नी करके कोई यात्रा प्रमाण न करे प्रयोग मर्ना मर्ना उनके विचारों से प्रमाणित होने का भाव प्रमाणित करे तो प्रयोग को प्रयोग मर्ना-मर्नी की प्रमाणित होगी है । उसे मर्ना है कि वह मर्नी को अपने विचारों से प्रमाणित करके उसका बहुत बड़ा प्रमाण कर रहा है व मर्ना उसके भावों को प्रमाण कर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दे रहा है, प्रयोग इसकी विपरीत स्थिति में उसे मर्नी की बुद्धि पर मर्ना ही मर्ना है ।

मर्ना: यह बात मर्ना-प्रमाणित मित्र होती है कि मर्ना को अपनी बुद्धि व दूसरे की मर्ना हमारा मर्नी मर्नी है, इसीलिए नगीहन द्वारा अपनी विपरीत बुद्धि की भाव मर्ना-मर्नी मर्ना मर्नी मर्नी की मर्ना की इस मर्ना मर्नी-मर्नी प्रमाणित का न मर्नी मर्नी है, न मर्ना ।

123

केक सामर्थ्य का मूल : परमार्थ

८

र शर्मा

वासना, धर्म और धाढम्बर, राजनीति और भ्रष्टाचार ही की तरह परमार्थ भी एक-दूसरे से इतने घुले-मिले रहते हैं कि नीर-शीर जहृंस को भी कठिन लगे। यह कह पाना अत्यन्त कठिन है कि किसी परमार्थ का अंश कितना है, अथवा किसी परमार्थ में स्वार्थ का अंश है।

सामान्य धर्म में व्यक्तिगत हित में ही जाने वाली चैष्टामों को स्वार्थ और किसी धर्म के हित में ही जाने वाली चैष्टा परमार्थ के नाम से जाती है। किन्तु विशिष्ट धर्मों में मनुष्य की घासुरी वृत्ति स्वार्थ नाम देवी वृत्ति परमार्थ नाम से जानी जाती है। स्वार्थ, अर्थात् ही पाशविक चैष्टा। परमार्थ, अर्थात् मनुष्य की देव भूमिका। अपने लिए रने मनचाहे व्यक्तिर्मा के लिए हम सब कुछ करने को तत्पर रहते हैं। से अधिक सुख-सुविधाएँ हम अपने लिए सुरक्षित कर लेना चाहते हैं। मान चाहिए, प्रतिष्ठा चाहिए, नानाविध भोग-साधन चाहिए। हर स्थान, ति, हर चैष्टा व्यक्तिगत सुरक्षा ही के लिए तो ही जा रही है। भूठ, भ्रष्टाचार, बेईमानी—क्या नहीं करते हम स्वार्थ के बशीभूत ?

स्वार्थ दुर्व्यसनों का जनक है, कुविचारों की उत्पत्ति करता है, विवेक बरके मोघ और मोह के नागपाश में हमें बाँध देता है। फिर हमारी टा मतलब देखने की ही जाती है—अर्थात् अमुक काम में हमें क्या लाभ ला है। जिस काम में हमें कोई लाभ होने वाला नहीं, उद्योग चाहे धर्म को नाम पट्टबजा हो—करना हम अधिन नहीं समझते।

दान-मुष्य होते हैं। तीर्थ-यात्राएँ की जाती हैं। बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ, नि और स्कूल खोले जाते हैं। अलंकार धर्म-ध्वज स्थापित होते हैं। बारह-प्याऊँ बँटाई जाती हैं। नानाविध धर्मोपायनाएँ की जाती हैं और मुपानों

धार्मिक सामर्थ्य का

का सत्कार किया जाता है, लेकिन क्या इन सबके पीछे परमार्थ ही एकमात्र भावना है ?

व्यक्ति अपने अन्तर्जगत में कई कृत्याकृत्यों से नैतिक धूम्यता का अनुभव करने लगता है। और अपने दुष्कर्मों का परिहार करने की इच्छा से, भविष्य सुखमय बनाने की इच्छा से बिना निविज्ज जीवन-यापन की इच्छा से अथवा अन्य किसी भौतिक फल-इच्छा से प्रभावित होकर सत्कृत्य की ओर प्रवृत्त होता है। कोई लोभ अथवा कोई-न-कोई भय आपको बड़े-से-बड़े सत्कृत्य के आधाररूप में बैठा मिलेगा।

किर बड़े-बड़े परोपकारों भी जब कर्त्ता की हैमिमत के अनुपात से माँके जाएँ तो वे किसी सामान्य छोटे परोपकार से भी बहुत छोटे प्रमाणित होते हैं।

स्वार्थसिद्धि के हेतु किया गया परमार्थ भी स्वार्थ ही की संज्ञा में आता है।

जितने क्रियाकलापों को हमने मोटे धर्य में कर्त्तव्य नाम की संज्ञा दी है, वे सभी मूलरूप में प्रतिष्ठित स्वार्थ ही हैं। सरकारें बड़े-बड़े उद्योग-धंधे, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर या यों कह दें मह पूरा का पूरा संसार-वक्र स्वार्थ की कौली पर घूम रहा है। हमारे सम्बन्ध, घलभाव, शत्रुता और मैत्री—सब स्वार्थ पर केन्द्रित हैं। स्वार्थों की गुलाम मनोवृत्ति होती है। स्वार्थों का कपट-व्यवहार होना है। स्वार्थों जीवन के हर क्षेत्र में व्यवसाय को बढ़ावा देता है। शर्म-शर्मः मनुष्य इतना स्वाभिमानहीन हो जाता है कि उसमें और दुतकारे जानेवाले कृत्य में कोई अन्तर नहीं रहता। स्वार्थों कभी-कभी अन्य स्वार्थों का भी सहयोग नहीं कर पाता, जब तक सहयोग के अन्तर्गत अपना स्वार्थ निहित न हो। पिता-पुत्र में मुकदमे होते हैं। भाई-भाई लड़ मरते हैं। पति-पत्नी घृणक् हो जाते हैं। मनुष्य स्वार्थ ही के बंधीभूत अपने स्नेह-भाव की हत्या करने तक पर उत्तर आता है। सच ही, ऐसा लगता है जैसे स्वार्थरूपी भवानिक दैत्य से बचने का कोई उपाय नहीं। हम स्वार्थ में सोते हैं, स्वार्थ में जागते हैं, स्वार्थ में सोचते हैं, स्वार्थ ही में क्रियाएँ करते हैं। हमारा व्यापक परमार्थ भी किसी न किसी स्वार्थ ही से सम्बद्ध है।

है भी ऐसा ही। हम वहीं भी कभी भी स्वार्थ से अछूते नहीं रहते। रह भी नहीं सकते। क्योंकि स्वार्थ से अछूते रहकर परमार्थ के निकट आने के लिए पहली शर्त स्वयं को कष्ट देने की है, जो हमसे पूरी नहीं होती। हम स्वयं को कष्ट देकर किसी का भला करने को कभी तैयार नहीं होंगे। दूसरों की भलाई के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर देने की पवित्र भावना बड़े-बड़े संत पुरुषों में भी नहीं पायी जाती। लेकिन देवी-देवताओं की दुर्लभ महत् महत् परमार्थ तत्त्व

की साफ-गुथरी भोंपड़ी में देखने को मिल सकेगा। एक उच्चस्तरीय कलाकार में देखा जा सकेगा। प्राणीमात्र का उपकार कर पाने की सहज वृत्ति ही परमार्थ की श्रेणी में आती है। परमार्थ क्रिया न होकर स्वभाव है। प्रेम और करुणा इसके जनक हैं। उदारता इसकी सहायक है। अनासक्ति इसकी शक्ति है। धर्म, राह और साधना गति हैं। निरन्तर सद्गुणों की वृद्धि इसका अमिक प्रतिफल और जीवन की पूर्णता तथा स्वरूपदर्शन का अखंड आनन्द इसका अनाकांक्षित महत्फल है। जिसका स्वभाव पारमार्थिक हो जाय, वह यदि ईश्वर नहीं तो ईश्वर से कुछ कम भी नहीं। इतिहास साक्षी है, जिन्होंने औरों के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया वे कोटि-कोटि जनता के भगवान हो गए। आज हम संसार के भिन्न क्षेत्रों में जिन विभिन्न व्यक्तियों की भगवान को तरह पूजा करते हैं वे महापुरुष क्या थे? एक ही उत्तर है—परमार्थी ईसा, बुद्ध, मोहम्मद, गांधी, महावीर अथवा गुरुनानक, भगवान राम अथवा श्रीकृष्ण—सभी की महत्ता, सभी की शक्ति, सभी का बड़प्पन इस सहज पारमार्थिक स्वभाव के अन्तर्गत छिपा है।

परमार्थ ईर्ष्या-द्वेष नष्ट करके दृष्टिकोण को पवित्र करने में सर्वाधिक सहायक होता है। दूसरों को मुख्ती देकर स्वयं मुक्त अनुभव करने की अलौकिक सामर्थ्य आगती है। यह सुख शब्द परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। इसका मिठास छुरके-छुरके सहजता से कोई परोपकार करने पर ही मिल सकता है। यहिमा, सहिष्णुता, सत्यता, शम्यता, विवेक और सच्चा जीवन-मुख परमार्थतत्त्व में दही तरह समाया रहता है जैसे दूध में दही, मक्खन, गाढ़ा, मितरी और अमृत का अंश। यदि जीवन की नाव का सफलता की ओर मोड़ना है तो उसे स्वार्थ की दिशा से परमार्थ की दिशा में घुमाना होगा। वस, यह घुमाव ही कठिन है। फिर तो स्वभाव की वामु नाव को सहारा देती है और साधना की पतवार इसे सेनी जाती है।

यह घुमाव है भी बहुत आसान। तदा अपने माग में से किसी जरूरत-मंद का देने की वृत्ति। अपनी इच्छा मारकर किसी टिड्डुरते गरीब को एक प्यासी दिया दी।

मन में इन इच्छा का वेग छि मेरे द्वारा किसी का कुरा न हो। एक सलह—क्या मैं धातके कुछ काम भी सकता हूँ ?

जीवन-सौन्दर्य

०

शांतीनाथ शर्मा

साधु, सिद्ध, गुह्यरत्न—इन तीनों शब्दों का दार्शनिक मयोज ही जीवन को वास्तविक परिभाषा है। कुछ लोग जीवन की पूर्णता व सत्यता को विभिन्न धारणाओं में धारित है, उनमें कुछ जीवन में धारण एवं व्यक्तार्थ के साथ ही जीवन की गंगा देखे है जबकि कुछ उसे ही जीवन कहते हैं जो समझानुसार हो, या ही व्यक्तिगत जीवन में वैयक्तिक ज्ञानार्थ के योग-योग हो और इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन के गुण को शक्ति मय ही उनके जीवन की सत्यता सुनिश्चित मानते हैं।

जीवन वही है जहाँ सौन्दर्य हो। सौन्दर्य वही ही सम्भव है जहाँ गुण साहस में करण हो। गुण भी वही है जहाँ प्रेम का स्वभाव हो। इसी प्रकार प्रेम एक ऐसा आधार है जो दूसरों के लिए अधिकाधिक करने व अपने लिए कम कम भोगने हेतु तत्परता का भाव नियंत्रण हो। सच्चाई तो यह है जीवन व प्रेम के सम्पूर्ण है, बिना सद्भावना व स्नेह के रिक्त है। जहाँ जीवन में जहाँ रिक्तता का आभास हो, वहाँ उदात्तता व त्याग का धारण व्यक्तार्थ हो जाता है क्योंकि वही प्रेम के स्वभाव को स्पष्ट रूप में चकुरित करता है।

बहुते को यह सिद्धासन करते सुनता है कि उन्हें कोई प्रेम नहीं करता लेकिन मेरा यह अभिमत है कि धारा प्रेम करना नहीं जानते हो, इसी प्रकार कुछ लोग यह कहते हैं कि जीवन में उन्हें निरास कर दिया है, यह सत्य नहीं है, जी को उन्हें निरास कर दिया है ! बोलम्बस ने अपने जीवन को साहस, बलिदान व त्याग का स्वभाव ही माना, और वह वही कर पाया जो कुछ चाहता था, अपने जीवन में सौन्दर्य की उपलब्धि सभी सुनिश्चित है जबकि मानव अपनी अन्तरात्मा से किसी गुणभाव को लेकर आगे बढ़े, और अपने आत्मविश्वास व सद्गुण सा के साथ हमारी पूर्ति-हेतु जीवन की समस्त शक्ति को उड़ेल दे। जीवन वही है सदैव सचित्र हो। जगद्वक्त्र हो। विविधता मय हो। सत्यता व सौन्दर्य है। सत्य

हंसने वाले दीर्घायु होते हैं

देवप्रकाश कोशिक

चिकित्सा-विज्ञान ने उन्नति भवस्य की है किन्तु उससे अधिक उन्नति की है मानसिक रोगों ने। प्रायः घायलों रक्त से रक्त नये प्रतिशत लोग चिन्ता, शोक, शीम आदि मानसिक विपत्तियों से ग्रस्त मिलेंगे। चिन्ता, असाह्य घाय जानने हैं, चिन्ता के समान है। अन्तर बेबत इतना है कि चिन्ता मुर्दे को जलानी है और चिन्ता जीवित मनुष्य को। घाय भी शोक, चिन्ता या शीम से भवस्य ग्रस्त होंगे। धार्य, हम घायलों एक फॉर्मूला बतायें इन सबसे मुक्त होने का। फॉर्मूला है बहुत छोटा किन्तु है बड़ा कारगर। फॉर्मूले का नाम है—'हंसी'। जी हाँ, हंसी घायलके शोक, चिन्ता तथा शीम को ऐसे भगा देगी जैसे मुक्तिवाहिनी तथा भारतीय सेना के जवानों ने पाक सैनिकों को भगा दिया।

स्वास्थ्य के लिए हंसी उत्तम ही आवश्यक है, जिसकी जीवन के लिए वायु। अंग्रेजी की एक कहावत है—'हँसो और मोटे हो जाओ।' पारबान्य देशों के लोग हंसी के लिए बड़ी से बड़ी भीमन देते हैं। वहाँ हास्य व व्यंग्य-लेखकों को अन्य लेखकों से अधिक पारिधायिक मिलता है। 'पब' पत्रिका जो कि इंग्लैण्ड से प्रकाशित होती है, संसार की सबसे प्रसिद्ध व्यंग्य-पत्रिका है। अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी हास्य तथा व्यंग्य का पर्याप्त समावेश रहता है। कारण, प्रायः यदि पारबान्य देश के लोगों को हास्य तथा व्यंग्य की खुराक नहीं मिले तो प्रायः से अधिक शोक पायन हो जायें, क्योंकि मनोमो सम्पत्ति ने उनका जीवन पत्र के समान ही याविक तथा नीरस बना दिया है। अंग्रेजी यदि बायरन ने हंसी के महत्व को पहचाना है। उसने कहा है—'मैं अंग्रेज सरकार की पर हंसता हूँ और इसलिए हंसता हूँ कि मैं रो न पड़ूँ।' बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक गाय कहा है बायरन ने। यदि घटत हंगने है तो घायल को रोना पड़ा ही नहीं सकता। हंसी घायल को मुक्त देती है। जब घाय हंसते हैं तो घायल का माय सब शोक हंगते हैं किन्तु जब घाय रोते हैं तो घायल का सब कोई नहीं देना और घाय घबरेने रोने है। हंसी हंसकर घाय घटने दुखों को उसमें दूबो सकते हैं। हाटमें बाँटित ने

ब्रह्मा है—'होगी होगी भी एक ब्रह्मा है त्रिमूर्ति का भाग माने दित ही दुःख-मरी पीड़ों को दूरा करने है।' भागने त्रिमूर्ति का भागों को होंगे देगा होगा उन्हें प्रवश्य ही स्वयं तथा गुणी पाया होगा। गीने जाने मनुष्य प्रपिबनर प्रवश्य ही होते हैं। यदि कोई व्यक्ति दुःखी है और वह हंगना है तो उसका दुःख भाग भी नहीं रह जाता। मैंने मरने नर के एक शिवन को देगा। वह साड़ी के सहारे घनता और पन्द्रह-औम ब्रह्म बनकर एक जाता, क्योंकि द्रव्य में अधिक वह बन ही नहीं पाता। एक दिन वह मुझे गम्भी में मिला। जब मैंने उसकी यह स्थिति देगी तो मैं एक गया। वह हंगने हुए बोला, "प्राप्ति, मैंने बनने-बनने के एक सपना जान्दा है।" वहने की आवश्यकता नहीं कि मैं हूँ बिना न रह सता। जो व्यक्ति ऐसी दशा में भी हों गकता है वह क्यों नहीं गुणी रहेगा। बाद में मुझे मानुष हुआ कि उम शिवन की यह दशा पिछले दस वर्ष से है। यदि वह हंगना नहीं तो क्या वह अभी भी जीविन रह गकता ?

हमने वाले व्यक्ति दीर्घायु होते हैं। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ६५ वर्ष जीविन रहे। प्रलेक्चरर पोप भी ८६ वर्ष जीविन रहे। दोनों ही होंते थे और लोगों को होंते थे—व्यंग्य व हास्य लिखकर। शॉ से किसी महिला ने विवाह का प्रस्ताव यो रखा, "आप बुद्धिमान हैं और मैं सुन्दर। यदि हम विवाह कर लें तो हमारी सन्तान आप-जैसी बुद्धिमान तथा मेरी-जैसी सुन्दर होगी।" शॉ ने संक्षिप्त उत्तर दिया, "और यदि वहीं इसका उत्तर हो गया तो ?" वास्तव में शॉ का प्रमिप्राय था कि यदि सन्तान उन-जैसी प्रसुन्दर व उस महिला-जैसी मूर्ख हो, तो क्या होगा।

कुछ लोग प्रश्न कर सकते हैं—हमें कैसे ? हमारा उत्तर है कि अपने प्यारे भारतवर्ष में होंसी के स्रोतों की कमी नहीं है। हमारे देश में तो प्रमिनेता तथा प्रमिनेत्रियाँ ऐसा प्रभिनय करते हैं कि दुःखान्त फिल्म भी होंसी से भरपूर हो जाती है। यदि आप किसी फिल्म को अच्छा समझकर देखने जाते हैं और फिल्म धीरे निकलती है तो अपनी स्वयं की भूखंता पर ही होंसिये। यदि आप अपने चारों ओर नजर दोड़ायें तो आपको होंसी के डेर सारे स्रोत नजर आयेंगे। यदि दुर्भाग्य से आपको नजर कमजोर है और आपको होंसी के स्रोत नजर नहीं आते हैं तो आइये हमारे साथ। यह देखिये इस विद्यालय में एक सज्जन भाषण भाड़ रहे हैं समय की वचन पर, और भाषण पिछले दो घंटे से दे रहे हैं। पहले तीन कालाशों का पक्का महोदय की कृपा से खून हो ही गया और भाषण अभी प्रधूरा ही है। क्या आपको होंसी नहीं आयी ? यदि होंसी नहीं आयी तो आइये हम आपको बाजार ले चलें। वह देखिये एक कुरूप महिला आ रही है, एक बड़ा-सा लूझ लगाये। होंटों पर गहरी लिपस्टिक और गालों पर लज लगा हुआ है। कपड़े इतने संग कि कदम छः इंच से अधिक नहीं पड़ सकते। उसकी प्रदा देखकर

यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि वह अपने-आपको किसी ब्यूटी वहीन से कम नहीं समझ रही है। तभी एक गाय उसकी घोर दोड़ी घाती है। महिला उस गाय से बचने के लिए दौड़ रही है पर लंग कपड़ों के कारण दौड़ा नहीं जा रहा है। यदि आप में थोड़ी-सी भी कल्पना-शक्ति है तो दृश्य की कल्पना कर आप हँसे बिना नहीं रह सकते।

प्राचीन काल में राजा-महाराजा अपने दरबार में विद्वपक रखते थे। ये विद्वपक प्रायः काफ़ी बुद्धिमान होते थे। बीरबल छक्कर का विद्वपक था। शेक्स-पियर के 'किंगलियर' में भी 'फूल' (Fool) नामक पात्र है जो कि एक बहुत बुद्धिमान विद्वपक है। आप कहेंगे कि भाजकल शासन में विद्वपक नहीं है। मेरे विचार से तो भारतीय शासन में विद्वपको की भरमार है। अन्तर केवल इतना है कि ये विद्वपक क्रिया-कलाप में प्राचीन विद्वपकों से कुछ भिन्न कोटि के होते हैं। आपने समाचारपत्र में पढ़ा होगा कि एक मंत्री महोदय ने अपनी पुत्री के विवाह के लिए आसपास के धोबों की विजली तीन दिन तक बन्द रखी। विवाह में ऐसी रोशनी हुई कि पहले कमी भी नहीं हुई थी। सारे नियमों को तोड़कर दावत में हजारों आदिमियों को खाना खिलाया गया। यह हँसी का विषय नहीं है तो क्या है ?

कुछ त्योहार हँसी के लिए मनाये जाते हैं—जैसे होली तथा पर्यट भ्रमल फूल। होली में तरह-तरह के स्वांग रचे जाते हैं जिन्हें देखकर हँसी का खजाना छूट पड़ता है। 'भ्रमल फूल' में आपकी इस प्रकार बेवकूफ बनाया जाता है कि आपको अपनी भूलता पर स्वयं हँसी आती है। यदि आप ओष में हो तो हँसी आपकी रक्षा करती है। एक बार एक शरास्त्री छात्र को अध्यापक ने निम्नी शरास्त्री पर कथा से बाहर निकाल दिया। उस समय अध्यापक बहुत ही ओष में थे। छात्र ने जब क्षमा माँगी तो उनका ओष इतना बढ़ गया कि चेहरा तमतमाने लगा। तभी एक अन्य छात्र सड़ा होकर बोला, "सर, क्षमा कर दीजिये देवारे को, आपका ही लडका है, आपको बला-मलाया लडका मिल रहा है।" उसका इतना रहता था कि सब छात्र हँस पड़े। अध्यापक महोदय भी हँसे बिना न रह सके। वास्तव में अध्यापक महोदय की कुछ दिनों बाद शादी होने वाली थी। उन्होंने मुसकराकर छात्र की क्षमा कर दिया। यदि उन्हें हँसी नहीं आती तो स्थिति गम्भीर तो थी ही, दुःखान्त भी हो सकती थी।

कोई क्या कहेगा !

□

हेमप्रभा जोशी

प्रत्येक युग और समाज में ईमान भी यह समस्या कि कोई क्या कहेगा। उसी उन्नति के मार्ग को प्रवर्द्ध करती आयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हमारी इच्छा, हमारी सुविधा और हमारी पसन्द का कोई महत्व ही नहीं है। इसी एक प्रश्न ने हमें क्या-से-क्या बना दिया है। यदि कभी सोचा भी है तो हमने अपने को भ्रमंग ही पाया है। कोरा सोचना कोई महत्व नहीं रखता है। सही दिशा में सोचकर उस ओर बढ़ना ही महत्व रखता है।

उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते, साते-पीते—यों कहना गलत न होगा कि हर कार्य करने से पूर्व, हमारे मस्तिष्क में यह प्रश्न उठता है कि प्रमुख कार्य करते हुए किसी ने देख लिया तो कोई क्या कहेगा ?

मेरी एक सहेली कॉलेज में पढ़ती थी। वह मुझे एक दिन अपने कॉलेज में ड्रामा दिखलाने ले गयी। कुर्सियों पर हम जा बैठे थे। कुछ देर बाद उसे प्यास लगी। मेरे आग्रह पर भी वह उठी नहीं। पर जब मुझे प्यास लगी, तो वह मेरे साथ एक पानी के कूलर तक आयी। मैंने पहले उससे पानी पीने को कहा। वह बोली—'आप पीजिये।' कारण पूछा तो बोली—'हाथ से पानी पीते हुए कोई देख लेगा तो क्या कहेगा ?' मैं कुछ पलों तक तो उसे आश्चर्य-दृष्टि से देखती रही। फिर पानी पीकर उसे कुछ देर तक पानी पीने का आग्रह करती रही। पर वह न मानी। प्यासी ही लौट पड़ी। यह हाल तो तब था, जब वह एक मध्यमवर्गीय परिवार की छत्रछाया तले जीवन बिता रही थी। वास्तव, यदि वह किसी रईस के घर पंदा हुई होती तो ?

जरा सोचिये जब हम इतने झूठे दिखावे को भी प्रोत्साहन देंगे तो हम प्रगति कैसे करेंगे ? यही कारण है कि आज हम हमेशा रोते रहते हैं। कभी इसी समस्या को रोते हैं तो कभी किसी समस्या को। सब पूछी तो हमने अपनी आवश्यकताओं की रूढ़ि को इतना अधिक बढ़ा लिया है कि उनकी पूर्ति

करना कठिन ही नहीं असम्भव समझा है । लेकिन फिर भी हम भेड़ की चाल से चले जा रहे हैं । हमारे तन-मन को यह बात घुन की तरह से खाए जा रही है कि दूसरे ऐसा पहनते हैं, खाते हैं धीरे रहते हैं, इसलिए हम भी वैसा ही पहनें, खाएँ और रहें । नहीं तो कोई क्या कहेगा ! हम पतंग को यह नहीं सोचते कि इस तरह झूल झूलकर क्यों चलें ? दूसरों की नकल करने से लाभ क्या ? हमारी चादर कितनी लम्बी-चोड़ी है ? गँवरह । पर जब हमारी किन्ती बड़े भटके से कुछ देर के लिए झूलें खुलती हैं और हम अपने को मुसीबतों से घिरा पाते हैं तो हम दूसरों को बुरा कहने लगते हैं । पर यदि बारीकी से हम अपनी परेशानी, अपने दुःख व अपने रोने का कारण जानें तो हम मुख्यरूप से स्वयं को ही दोषी पायेंगे । फिर भी हम यदि झूल मूँदकर ही चलेंगे तो हमारा क्या-से-क्या रूप होगा, यह भी देख लीजिये । पाँच-छः वर्ष पूर्व की बात है । हम एक बिगड़े रईस की हवेली के एक हिस्से में किरायेदार के रूप में रहते थे । बँटवाटे में उस रईस के हाथ बहुत संपत्ति लगी थी । फिर क्या था ? रहने का आपका स्तर और ऊँचा उठ गया । देखते ही-देखते आपको पतंगबाजी के शौक में धा घेरा । हथारो खपा जब उस शौक को धर्म में स्वाहा हो गया तब आप, उसकी प्रति हेतु कहिये या नए शौक के कारण कहिये, सट्टे के मैदान में धा बूँदे । काफी सम्पत्ति जब आपने उसमें भी खो दी तब आपकी झूलें खुली । जैसे-तैसे बची-खुची सम्पत्ति से आपने मोटरों की मरम्मत का धंधा शुरू किया । भ्रव जी कार ठीक होने जाती आप या आपका परिवार अभी में घूमता दिखाई देता । यहाँ तक देखा गया कि आप पान खाने भी जाते तो कार में जाते । कार से उतरते तो उसी रईसी अन्दाज से उतरते, जैसे उनकी खुद की कार हो । कहने का तात्पर्य यह कि आपका स्टेण्डर्ड तो घटने के बजाय बढ़ता ही रहा और कर्म बढ़ता रहा । एक दिन वह भी धा गया जब आपके दरवाजे पर धाकर कर्जदार आपको धावाजें लगाने लगे । यह जीवन क्यों धाया ? गहराई से विचार किया जाए तो हम उन बिगड़े रईस व उनके परिवारवालों के मस्तिष्क में यही प्रश्न कि कोई क्या कहेगा विचारात् रूप में उभरना पायेंगे ।

ऐसे एक नहीं, अनेक इस रोग के रोगी हमारे दर्द-पिदं घूमते रहते हैं । यदि गौर करें तो हो सकता है कि हम भी उन रोगियों में से एक हों ।

यह कहना गलत न होगा कि इस कमर-तोड़ महंगाई, इस बढ़ती चोर-जाचारी के पीछे, हमारे मस्तिष्क में गलत रूप से उठ इस प्रश्न का कि कोई क्या कहेगा, गहरा हाथ है । तभी सँजनेबुल लोगों की सच्चा दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है । नए-नए फैसल, नई-नई चीजें सामने धा रही हैं । हम उनके पीछे भागे जा रहे हैं, भले ही हमारी खुशी पीछे छूटती जा रही है । दिखावटी

भी बें दिगायत्री खुशी ही मानेंगी। यह जानकर भी हम बंटीने रात्रों की घोर दोड़ जा रहे हैं। उनमें से नहीं तो घोर क्या होगा ?

प्रगति की घोर घबराहट होना बुरा नहीं, बुरा है बुराई की घोर बढ़ना। हर बचम उठाने से पहले, किसी की आलोचना की बिना किये बिना यदि हम यह सोच लें कि हमें क्या जाना है, क्या करना है, सही मापनों में कैसे करना है, तो सब मानिये कि हमारे पास यह बिन मुत्ताए मेहमान की-सी बेचनी पटनेगी नहीं। हमारे स्वायत्त के लिए प्रसन्नता, उन्नति और मानविक शांति द्वार पर छाड़ी मिलेगी।

जरा सोचिये, हमारा भी कोई अस्तित्व है। हमारी भी कोई पसन्द है। तो फिर क्यों न हम अपनी सही इच्छानुसार जियें ? इसका अर्थ यह नहीं कि हम समाज से अलग हो जायें, अपनी इच्छा अपना राग ही अलापें; बल्कि इस समाज में ही ऐसे रहें, जिससे लोगों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत हो। भटके राही एक दिन कहें उठें कि वास्तव में जीवन ही तो ऐसा हो। तब हम ही सुखी न होंगे, हमारा परिवार सुखी होगा, हमारा देश सुखी होगा।

विचार पर विचार

□

विश्वनाथ पाण्डेय 'प्रणय'

जन्तु जगत में मनुष्य इसलिए श्रेष्ठ माना जाता है कि वह अत्यन्त विचारशील प्राणी है। उसका मस्तिष्क निरन्तर किसी-न-किसी समस्या पर विचार करता रहता है। शायद इसीलिए मानव मस्तिष्क दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक और मूल्यवान वस्तु है। मनुष्य होने के नाते हम अनेक पहेलियों पर सोचते प्रयत्न विचारते हैं। किन्तु, हमारे मस्तिष्क में कदाचित ही यह बात कौमती है कि विचार कहते किते हैं ? विचार अपने भाष में है क्या ? शायद हमें इसकी आवश्यकता भी नहीं पड़ती।

विचार जो अपने भाष में समस्त विन्तनशील जगत को समाधिष्ट किये हुए है, विभिन्न प्रकार के भावों का संयोजन कर उन्हें एक-विकृत द्वारा भाषे बढ़ाते रहनेवाली एक शृंखला है, जिसका उत्पत्ति-स्थान है—मस्तिष्क। मस्तिष्क में ही विचार उठते हैं, सागर की ऊँधियों की भाँति जो धनवरत चलते रहते हैं, तब तक जब तक कि मस्तिष्क पूर्ण विश्राम की स्थिति में नहीं आ जाता। जिस प्रकार जल-तरंगें जल-तल पर बनती हैं और बिना जल के तरंगों की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार विचार भी सर्वदा भावों की पृष्ठभूमि से उपजते हैं और बिना किसी भाव के विचार का अस्तित्व स्वीकार्य नहीं।

विचार कभी न नष्ट होनेवाली भूक आध्यात्मिकता की अवस्था है, जिसका मन्थन केवल मस्तिष्क में ही होता है। यह एक बार निमित्त होने के पश्चात् कभी समाप्त नहीं होता। यहाँ, शायद अतिथि व्यक्ति इस तर्क से असहमत हों, इसीलिए इसे अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है। कल्पना कीजिए, हम चार व्यक्ति साहित्य-पक्षा कर रहे हैं। हमसे से प्रत्येक चर्चान्तरगत इतना तल्लीन ह कि उसे बाहरी दुनिया का भान ही नहीं रह गया है। साहित्य का रसास्वादन हमें खर्चा बढ़ाते रहते के लिए निरन्तर प्रेरित किये हुए हैं और हम उसमें पूर्णरूपेण विमोह हैं। इसी बीच कोई बाहरी व्यक्ति आकर हमसे से किसी एक की ओर से पुकारता है और हमारी चर्चा का क्रम टूट जाता है। इस

समय सामान्य रूप में कोई भी कह सकता है—गाय मन्त्रा लिखित कर दिया, या गारा मुद्रगोचर कर दिया। पर मोक्षित्व, उगने वाले विचारों का सब नष्ट किया है? केवल एक बात बही है, एक दूसरा आधार दिया है जिस पर या दूसरी तरह से विचार करने लगे हैं। हमें हम यों भी कह सकते हैं कि उगने चर्चा की गृष्टभूमि बदलकर एक नयी गृष्टभूमि प्रदान की है और हमारे पूर्व के विचार जहाँ थे, अपनी धरम में वहीं छूट गये हैं। और हम नवीन विषय या गृष्टभूमि पर नवीन विचारों के साथ धमक ही गये हैं। इन प्रकार विचार कभी न नाट होनेवाली, भावों को धामे बढ़ानी रहनेवाली एक तात्कालिक-वस्था है। जिस प्रकार भाव कभी नष्ट न होकर विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित होते रहते हैं, उसी प्रकार विचार भी कभी नष्ट न होकर बदलते रहते हैं।

विचार और चिन्तन—सामान्यावस्था में हम विचार व चिन्तन को एक ही अर्थ में स्वीकारते हैं। दोनों में पर्याप्त समानता होने हुए भी मूलरूप से भिन्न हैं। चिन्तन का आधार हमेशा किसी प्रकार की चिन्ता होती है। इसी प्रकार, एक शब्द 'सोचना' भी है। यह भी विचार से साम्य रखने वाला शब्द है। किन्तु इसका भी आधार सामान्य भाव न होकर एक विशिष्ट भाव है—सोच। लेकिन जब 'चिन्ता' या 'सोच' से उद्भूत उसकी विभिन्न अवस्थाओं पर हम मनन करने लगते हैं, तो उसके कारणों पर प्रभाव डालनेवाले विभिन्न अन्य भाव जिन्हें हम सहभाव भी कह सकते हैं, निमित्त होने लगते हैं और इन भावों की बढ़ाते हुए जब हम सामान्य गृष्टभूमि पर उतर आते हैं, तब हम चिन्तन करना या सोचना छोड़कर विचारने लगते हैं। बहने का तात्पर्य है कि चिन्तन करना या सोचना सभी तक माना जा सकता है, जब तक उसमें चिन्ता या सोच का भाव विद्यमान हो। जैसे ही मूल भाव (चिन्ता अथवा सोच) समाप्त हुए उक्त दोनों प्रक्रियाएँ विचारने की प्रक्रिया के अन्तर्गत आ जाती हैं। इस प्रकार विचारने की प्रक्रिया भाव-विशेष पर आधारित न होकर सामान्य भावों पर आधारित होती है, जबकि चिन्तन अथवा सोचने की प्रक्रिया भाव-विशेष पर आधारित रहती है।

विचार के स्वरूप—विचार की दो दिशाएँ हैं—धनात्मक व ऋणात्मक। धनात्मक दिशा वह होती है जिसमें से होकर गुजरते समय विचारक को फूँक-फूँककर पैर रखने पड़ते हैं। इससे उद्भूत विचार सर्वगुणयुक्त, सर्वसम्मत एवं सर्वथा कल्याणकारी होते हैं। इसे मैं जन-हितकारी एवं सर्वांगपूर्ण विचारों की उत्तम दिशा की संज्ञा दूँगा। किन्तु इसके लिए मन की एकाग्रता, निरालसता एवं विवेक-शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। दूसरी दिशा ठीक इसके विपरीत, भ्रमंगलकारी है—विचारक के लिए भी और समाज के लिए भी। व्यक्ति के विचार जब देश-वाल,

की आवश्यकताओं के अनुरूप न होकर उनसे भिन्न दृष्टिकोणवाले होते हैं, तब वे ऋणात्मक दिशा की घोर-उन्मुख हुए विचार माने जाते हैं। चूंकि हमारी आवश्यकताएँ देश-काल की आवश्यकताओं से भिन्न न होकर उन्हीं का अंग हैं, इसलिए देश-काल की आवश्यकताओं के प्रतिकूल विचार स्वयं हमारे प्रतिकूल प्रभाव डालनेवाले विचार कहे जायेंगे, बल्कि ही इस प्रकार के विचारक को यह बात युक्तियुक्त न प्रतीत हो। यही यह विचारणीय भी हो जाता है कि ऐसे विचारों का अस्तित्व ही क्या जिनका हमें परित्याग तक न मिले, जो हमारे अनुकूल न हों! आप कहेंगे—क्या ऐसे भी विचार होते हैं? मैं स्पष्ट शब्दों में कहूँगा—हाँ, स्वार्थपूर्ति के लिए किये गए व्यापार, उन्हें साकार बनाने के लिए अपनाये जानेवाले विविध साधन और इन सबको सुसंचालित करने के लिए इन पर विविध प्रकार से किये गये विचार—यह सब क्या है? ऋणात्मक दिशा की घोर उन्मुख विचार ही तो हैं। इन दो दिशाओं के आधार पर ही हम विचारों के दो स्वरूप निर्धारित कर सकते हैं—(१) सपुष्ट, सुप्रिय एवं जन-हितकारी विचार, (२) अपुष्ट, अप्रिय एवं अकल्याणकारी विचार। सपुष्ट विचारों का अर्थ है—सर्वप्रकारेण पुष्ट अर्थात् जिनकी पुष्टि हो सके। किन्तु, विचारों की पुष्टि तभी हो सकती है जब वे पूर्णरूपेण रोधित व परिमार्जित हो और उनमें तर्क के लिए स्थान न रहने पावे। इस प्रकार के विचारों का प्रादुर्भाव केवल परिपक्व मस्तिष्क से ही सम्भव है। अवस्था के साथ मस्तिष्क भी परिपक्व होता है, यह मायता काफी प्रचलित है। किन्तु, इसमें कुछ समझें रह जाता है। केवल अवस्था के बढ़ते रहने से मस्तिष्क की परिपक्वता सम्भव नहीं है। मनोविज्ञान के अनुसार सभी मस्तिष्क एक-दूसरे से नहीं हो सकते। उनका भी श्रेणी-विभाजन किया है। मस्तिष्क की परिपक्वता का बौद्धिक क्षमता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। बौद्धिक स्तर की दृष्टि से जो व्यक्ति जितना सक्षम होगा, उसका मस्तिष्क उतना ही परिपक्व माना जायेगा। प्रायः हम बौद्धिक स्तर की श्रेष्ठता का अनुमान उच्च शिक्षा से लगाते हैं, किन्तु यह हमारी बहुत बड़ी भूल है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उत्तम होगा कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने का बुद्धिमान बनने से दूर का सम्बन्ध है, जैसा कि हमें अपने सामाजिक जीवन में दृष्टिगोचर होता रहता है।

सपुष्ट विचार व्यक्ति को प्रिय लगें, यह आवश्यक नहीं। इनमें तर्क का कोई स्थान नहीं होता, किन्तु कई बार अनुसन्ध से अभिभूत होने के कारण ये अप्रिय लगने लगते हैं। विचार सबको प्रिय लगें, इसके लिए आवश्यक है कि उनमें जनहित के भाव भी समाहित हों। सर्वप्रकारेण पुष्ट एवं सर्वहितकारी विचार ही सुप्रिय होते हैं, समाज का सही मार्गदर्शन कर सकते हैं, अन्धारा इसका विपर्यय होता है।

मस्तिष्क की कार्यक्षमता के पचगव्य जो विचार बनते हैं, वे सर्वथा योग्य होते हैं, क्योंकि उनकी गूढ़ि नहीं हो पाती, उनमें तर्क के लिए पर्याप्त स्थान रहता है, त्रुटियों का सम्मिश्रण तो होता ही है। परिणामतः ऐसे विचार सर्वव्यापककारी गिड़े होते हैं। इसीलिए ऐसे विचार अगुह्य, अप्रिय एवं अकल्याणकारी विचार कहलाते हैं।

मेरे मतानुसार संशुद्ध विचारों के लिए यह आवश्यक है कि त्रिग विषय पर विचार किया जा रहा है, उसके विभिन्न पहलुओं पर तर्क किया जाय; अच्छाद्यों एवं बुराद्यों का लेगा-डोगा रहने हुए अत्यन्त सतर्कता के साथ केवल उन्हीं गुणों की विचारों में गिरोया जाय जो सर्वव्यापककारी एवं तर्क द्वारा प्रकाश्य हों, अर्थात् सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् जैसे सारवत्त मूल्यों से अभिमूर्त हों।

सड़क की आर्त्त पुकार

□

वसन्तीलाल महात्मा

संध्या का मुहावना समय था। प्रतिदिन के संध्या-भ्रमण के लिए जाने का विचार कर रहा था कि आज का यह संध्या-भ्रमण किस दिशा में हो ? सोचते-सोचते विचार आया कि आज उस सड़क की घोर चला जाय जिसका धमी-धमी निर्माण हुआ है और जो एक सुन्दर सरोवर के किनारे-किनारे होकर चली गई है। अतः उसी नव-निर्मित सड़क की घोर प्रशंसा किया। जब उस सड़क पर पहुँचा तो उसकी स्वच्छता एवं सुन्दरता देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वस्तुतः सड़क बहुत अच्छी और समतल रूप में बनाई गई थी। ऐसी सड़क पर चलते में वही भी ऊँचा-नीचा नहीं था। यदि कोई बार या बग उस सड़क पर होकर निकले तो बार या बग में बैठनेवाली सवारियों के पैर का पानी तक न हिले। इस प्रकार मैं उस नव-निर्मित सड़क की मन ही मन प्रशंसा कर रहा था। साथ ही उसके भाग्य की साराहना भी कर रहा था कि इस सड़क को हजारों-लाखों यात्रियों की आने-जाने गमगम स्वारों पर सुनिवातुरों की घोर सुरक्षित पहुँचाने का सुभवसर प्राप्त हुआ है। इनमें मैं मेरे जानों में एक धीमी परन्तु आस पुकार सुनाई देने लगी। मैंने आश्चर्यचकित अपने चारों घोर देखा पर कोई भी नहीं दिखायी दिया। तब उस आस पुकार ने ही अपना रहस्य प्रकट करने हुए स्पष्ट किया, "हे पथिक ! यह जो आस पुकार तुम्हारे जानों में आ रही है, वह घोर बिनी की नहीं ध्वनि मुझ नव-निर्मित सड़क की ही है जो तुम्हें धरती दुःख की बाग सुनाने की आहुर हो रही है।" यह सुनकर मैं घोर भी ध्वनि बिस्मय में पड़ गया और सोचने में लगा कि यह नवीन सड़क इतनी दुःखी क्यों है ? इसे कौन-सा दुःख व्याप्त है ? मेरे इन प्रश्नों के उत्तर में सड़क निम्नलिखित ढंग से बोली—

"हे पथी ! जिस दृष्टिकोण से तुम मेरी प्रशंसा कर रहे हो और साथ ही मेरे भाग्य की साराहना कर रहे हो वह उचित ही है। परन्तु मैं जिस दृष्टिकोण से अपनी दुःखी होकर जो आस पुकार कर रही हूँ, वह भी पूर्णरूप से उचित ही है क्योंकि इस बिस्व में तुमं साथ बिनी पर भी प्रकट नहीं होता है।

प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक पशु के प्रति अपनी-अपनी शक्ति एवं भावना के अनुसार अपने-आपने विचार अभिव्यक्त करता है। परा इन अभिव्यक्तियों में शान्तिपूर्ण का होना पूर्णरूप से स्वाभाविक है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति की अभिव्यक्ति अपनी-अपनी जगह उचित ही जान पड़ती है। परा मैं इनकी दुखी घाने निरी दृष्टिकोण से ही हूँ। जहाँ धारा मेरे माथ की सगाहना कर रहे हैं वहाँ मैं घाने निर्माण की प्रक्रिया को देखकर घाट-घाट घाँस रो रही हूँ। धारा मेरे दोनों घोर गहरे-गहरे गड्ढों की पंजाबी नहीं देग रहे हैं? घोर मे गहरे गहरे गड्ढों ही मेरे दुःख के वास्तविक कारण है। मैं इसे घाने दुर्भाग्य के अनिश्चित घोर समझ ही क्या करती हूँ कि मेरे निर्माण मे मेरे दोनों घोर की भूमि को गाँद-गोदकर मुझे समतल घोर ऊँचा बनाया गया है। अब धारा ही गहराई से बिजल घोर मनन कीजिये कि इस प्रकार के शोषण से निमित्त मैं घाने भाग्य की सगाहना करूँ या कोणू? वस्तुतः ऊँचा बनने की प्रक्रिया में इस प्रकार का शोषण हाना अवश्यभावी है। अब धारा रूपसे, घाने समाज की घोर भी दृष्टिकोण कीजिये। एक ग्राम की सौ या घसती भोंपड़ियों के मध्य दो या चार पक्के घोर ऊँचे मकान बने हैं तो यह निश्चित है कि उन पक्के घोर ऊँचे मकानों के अस्तित्व में उन सौ या घसती भोंपड़ियों का शोषण ही उमरा हुआ है। इसी प्रकार एक कस्बे में सौ-दो सौ पक्के घोर ऊँचे मकान हैं तो उन पक्के घोर ऊँचे मकानों के निर्माण में उस कस्बे की भोंपड़ियों का घोर साथ ही पड़ोसी गाँवों के पक्के मकानों का शोषण सहयोगी है। इसी प्रकार शहर की गणचुम्बो मट्टालिकाओं को इतना ऊँचा बनाने में उस शहर की समस्त भोंपड़ियाँ घोर पड़ोसी कस्बों के समस्त पक्के मकानों का शोषण साकार रूप सहण कर चुका हैं। यह शोषण की एक ऐसी प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती रहती है। समाज में जो सबसे अधिक घनी हैं वे ही सबसे अधिक शोषणकर्ता भी हैं। उन लोगों का घनी बनना या ऊँचा उठना मेरे ही समान शोषण पर निर्भर हैं। जिस प्रकार मेरे निर्माण में घास-भास की भूमि का शोषण किया गया उसी प्रकार समाज में जो भी व्यक्ति घनी बनता है वह निश्चित रूप से अपने पास-पड़ोस के कई व्यक्तियों का शोषण करके बनता है।”

अपनी श्राद्ध पुकार अभिव्यक्त करके सड़क तो यकायक मौन हो गई पर वह मुझे शोषण की प्रक्रिया का एक ऐसा रहस्य प्रकट कर गई जिसने इस दिशा में विशिष्ट रूप से सोचने एवं मनन करने की प्रेरणा दी। इसी चिन्तन घोर मनन में उन समस्त दार्शनिकों, संतों व कवियों के वे स्वर गुंजार करने लगे जिनमें उन्होंने एक स्वर से यह अभिमत व्यक्त किया था कि घनी बनने की आकांक्षा करना एक महान पाप है क्योंकि इस आकांक्षा में यह भावना निश्चित रूप से सन्निहित है कि अनेक व्यक्ति निर्धन रहें घोर उनके शोषण से घाने को

घनी बनाया जाय । इसीलिए सन्त कबीर ने स्पष्ट रूप से उद्घोषणा की—

भाभी और हत्ती भली, पूरी तो संताप ।

जो चाहेगा चूपड़ी, बहुत करेगा पाप ॥

चूपड़ी रोटी अर्थात् मेवा-मिष्ठान्न जैसे पदार्थों का सेवन करने के लिए बहुत पाप अर्थात् निर्धनों का शोषण करना पड़ेगा । इसी सदर्म में तथायुत बुद्ध के जीवन का एक पावन प्रसंग स्वयंमेव स्मृति-मण्डल पर अंकित हो गया जो निम्नलिखित है—

एक बार बुद्ध अपने उपदेशों का प्रचार करते-करते किसी राजा की राजधानी में पहुँचे । वहाँ के एक बड़ई के घर पर ठहरे । उन्होंने उस बड़ई के यहाँ रुखा-सूखा भोजन बड़े चाव और प्रेम से किया । प्रातःकाल ज्योंही वहाँ के राजा को बुद्ध के आगमन और बड़ई के घर ठहरने की सूचना मिली, वह स्वयं बड़ई के घर जा पहुँचा । वहाँ पहुँचकर उसने महात्मा बुद्ध से अपने राजमहल में आकर भोजन करने का आग्रह किया । बुद्ध ने राजा को बार-बार मना किया कि हे राजन् ! मैं आपके यहाँ भोजन करने में असमर्थ हूँ । पर ज्यों-ज्यों बुद्ध मना करने लगे, राजा का आग्रह बढ़ने लगा । अन्त में बुद्ध ने राजा के मन की रतने के लिए प्रातःकाल का भोजन उसके यहाँ करना स्वीकार कर लिया । जब बुद्ध राजमहल में पधारे तब हजारों दर्याऊ उनके साथ थे । राजा ने बुद्ध की आदरपूर्वक एक उज्ज्यासन पर बिठाया और उनके सामने स्वर्ण-प्याल में नाना प्रकार के व्यञ्जनादि परोसकर रख दिये । बुद्ध ने उस प्याल से से एक सड़ू उठाया और उसको मुट्ठी में लेकर सभी दर्याऊ के सामने दबाया । तत्पश्चात् नगर-निवासियों को वह देखकर आश्चर्य हुआ कि सड़ू में से रक्त की बूँदें टपक रही हैं । तत्पश्चात् बुद्ध ने बताया कि मैं आपके यहाँ भोजन करने के लिए इसीलिए मना कर रहा था कि आपके भोजन में आपकी सम्पूर्ण जनता का शोषण निहित है और वही शोषण इन सड़ू में से रक्त की बूँदों के रूप में टपक रहा है । मैं किसानों, भजद्वारों और कारीगरों के यहाँ भोजन इसलिए करता हूँ कि उनका रुखा-सूखा भोजन मुझ रूप में उनके परिधमका है और शोषण-रहित है ।

यही कारण था कि ईशामसीह ने भी उपदेशों में निर्भीकता से शोषणा की—

“मुई की नोक में से डेंट का निकलना संभव हो सकता है; पर घनी का स्वर्ग में प्रवेश पाना नितात असंभव है ।”

ईसा में घनी के स्वर्ग में प्रवेश पाने की नितात असंभव क्या बड़ा ? स्पष्ट है कि घनी अपने मनोपार्जन में निर्धनों का जो शोषण करता है और तत्पश्चात् धन का नाना प्रकार के दुर्व्यसनों में जो उपभोग करता है उससे वह स्वर्ग का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता है ।

समाप्त कर दी गई है जिससे यह करोड़ों रुपये की राशि जन-साधारण के हितार्थ खर्च की जा सके।

३. मृत्यु-कर लगाकर बड़े-बड़े बूजपतियों द्वारा शोषित धन को पुनः समाज के हित में लगाया जा सके।

४. शहरी-सम्पत्ति का निर्धारण किया जा रहा है ताकि धनिकों की शोम की सीमा स्थिर की जा सके और उनमें संतोष-वृत्ति पैदा की जा सके।

५. देहातों में जोत की सीमा निश्चित की जा चुकी है। इस प्रकार बड़े-बड़े जमींदारों और जागीरदारों से जो भूमि प्राप्त होगी वह भूमिहीनों में वितरित कर दी जाएगी।

इस प्रकार पंचमूत्रो योजनाओं द्वारा 'घरीबी हटाओ' कार्यक्रम को कार्यान्वित किया जा रहा है और शोषण की प्रक्रिया की सीमा को बहुत कम किया जा रहा है। यही नहीं, वर्तमान समय में अनाजों की अत्यधिक मूल्य-वृद्धि के कारण सरकार अनाज के शोक व्यापार की भी अपने हाथ में लेने की योजना पर काम कर रही है। इन सब योजनाओं में सरकार की अच्छी सफलता प्राप्त हो और समाज में हजारों वर्षों में खसो आ रही शोषण की प्रक्रिया समाप्त हो, यही हादिक इच्छा है।

अंत में 'सड़क की भातें पुकार' को देश के धनिकों की भी सुनाना है ताकि वे भी सड़क की भाति शोषण में विचलित होकर स्वयं प्रापक्षित करें और शोषण की प्रक्रिया को सीमित कर दें। अन्यथा सर्वहारा वर्ग की क्रांति की भाँषी में, जिसे श्रीमती इंदिरा गांधी लाने का पूर्ण प्रयास कर रही हैं, वे कहीं के नहीं रहेंगे। 'सड़क की भातें पुकार' को यही सामयिक चेतावनी है जिसे देश के धनिक वर्ग सुनें और संतोष को जीवन में अपनायेंगे क्योंकि महाकवि तुलसी ने संतोष को ही सबसे बड़ा धन माना है—

तो धन, गज धन, बाजि धन, और रतन धन सान ।

जब आवे संतोष धन, सब धन धूलि समान ॥

गढ़वाली लोकगीतों में सैन्य-भावना

□

राधाकृष्ण शास्त्री

रविवार, २६ जून, सन् १९४२ को जब हम गंगोत्तरी से श्री केदारनाथ के दर्शन करने जा रहे थे तो रातू चट्टी से गरीब डेढ़ मील गोपाल चट्टी के पास हटकर मरे सेतों में इधर अपने काम में तपस्वियों की-सी धुन लिए निश्चल भाव से पुष्प मग्न थे, उधर स्त्रियाँ हाथ से काम करती जाती थी तथा स्वरीले कंठों से राष्ट्र-सेवा-सैन्य-भावना गढ़वाली लोक-गीत गा रही थीं।

ओजस्वी कर्ण-प्रिय गीत सुनने हम ठहर गये। नीति-नीति के विचार भाये, वे वर्णनातीत हैं। सब है, जिनमें जीवन हो, जीवन का उत्साह और तावणी से भरी भरपूर राष्ट्र-भावना हो, वे ही निःस्पृह राष्ट्र-सेवी हो सकते हैं। क्यों न हो, नगराज हिमालय, भारत का भव्य ऊँचा भूस्थल, पुष्प-सलिला यमुना-गंगा का उद्गम-स्थल, श्री केदारनाथ-बद्रीनाथ का परमधाम—इसी में स्थित धर्म-प्राण भारत का सौष्ठव बढ़ानेवाला प्यारा गढ़वाल प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विशिष्टताएँ रखनेवाला यह उत्तराखंड अपने लोक-गीतों में भी अपनी गौरव-गरिमा को बढ़ाये हुए है। एक ओर पर्वतीय जन-जीवन जितना संघर्षमय और कष्टदायक है, दूसरी ओर उतना ही देश-प्रेम और यथार्थ राष्ट्रीय भावना का पुंज-रूप है।

इतिहास कहता है कि गढ़वाली सैनिक ने समय-समय पर संसार के सम्मुख अपने शौर्य और सामर्थ्य के अपूर्व दृष्टान्त रखे हैं। गढ़वाल प्रदेश का प्रत्येक व्यक्ति अपने को राष्ट्र का कर्तव्यनिष्ठ सैनिक समझता है। हरी-भरी पर्वत बना-बलियाँ, गहरी भर्षावार घाटियाँ हर समय राष्ट्र-भक्ति, भावनानुर्ण लोच-नीतों से युजित रहती हैं। एक ओर पर्वतीय जन-चरित्रों का जज, कर्षीन्द्र और बुद्धि की घनी छायाओं में स्वस्थ-चित्त काम करती हुई युतयुक्त होती है तो दूसरी ओर उनका सैनिक पनि बर्षाति उत्तुंग शृंगों पर राष्ट्र के प्रति सीमा पर सजग प्रहरी रहता है।

यहाँ मैं गढ़वाली औरतों से सुने सैन्य भावना भरे गीत उद्धृत करता हूँ—

निखांदा मार जू रण मी,
निजांदो वार स्वीयो खाली ।
इना छन शूर रण थांका,
बहादुर घोर गढ़वाली ॥

लड़ाई के मैदान में गया हुआ गढ़वाली सैनिक दुश्मन को पीठ नहीं दिखाता क्योंकि उसका एक भी वार खाली नहीं जाता । गढ़वाली वीर ! इतने रणवीर होते हैं कि जिनका एक भी निशाना कभी नहीं चूकता ।

उक्त उत्तेजित गीत को सुन मैं आश्चर्यचकित हो गया । तब हमारे गढ़वाली कुली ने कहा "बाबूजी ! सुनो । यहाँ की स्त्रियाँ ही नहीं, राष्ट्रीय भाषति के समय तो यहाँ का सैनिक अपने परिवार, यहाँ तक कि अपने को भी भूल जाता है । उस समय राष्ट्र-रक्षा को ही वह अपना जीवन मानता है, केवल इसी को अपना कर्तव्य और धर्म समझता है । जैसे कि एक सैनिक पति अपनी स्त्री से कहता है—

धर्म मेरी प्राण ई वा
कि छों देश को सिपाही, मेरी मोहनी ।

प्रिय मोहनी ! प्राण मेरा सबसे बड़ा धर्म और कर्म यही है कि मैं लड़ाई के मैदान में जाऊँ, क्योंकि मैं राष्ट्र का सिपाही हूँ ।"

मेरे सहपाठी ५० उपाधकार जी ने कहा कि गढ़वाली लोहगीतों में सैनिक की लेकर पर्याप्त सामग्री मिलती है । अतः मैंने श्री केशवराय-भावा से जो गीत संग्रह किये उन्हें प्रस्तुत करता हूँ ।

भाषतिनाल में गढ़वाली भाषसी भेद-भाव को भुलाकर सर्वप्रथम राष्ट्र की रक्षा को प्राथमिकता देते हैं । जैसे—

हम से राष्ट्र पैली वा,
हमारी जान पैयर छन ।
जबरि भी मोद खो संकट,
तरण बलिदान एयर छन ।

—हमें राष्ट्र प्राणों से प्यारा है, हमारी जानियाँ राष्ट्र के पीछे हैं । देश पर जब कोई भी संकट आता है तो राष्ट्र-रक्षा के लिए गढ़वाली युवक प्राण छोड़कर बलिदान के लिए होड़ लगाते हैं ।

परीक्षा वह काल है जिसमें बड़े-बड़े वीर, वीर, धुरंधर ध्वंस जाते हैं—

स्वर्णकार ने स्वर्ण को दिया घनि में डार,
बाँप उड़्यो पानी भयो, देख परीक्षा काल ।

इतना सुनते ही तो मानो प्रगाढ़ निद्रा में सुप्त सिंहनी को बाघों की छिटपुट आवाज ने जगा दिया हो, वह सकासक भाषा, ममता और प्रेम की कच्ची डोर को तोड़कर अपने कर्तव्य और देश-भक्ति की घट्टट शिता बन, अपने घम की समझ गई कि गढ़ प्रदेश की स्थियाँ हमेशा ही ऐसा त्याग करनी पायी हैं। उसके (मोहनी ने) यवायक अपने भुगमंडल पर विजयोल्लास की उमंग लिये हँसती-हँसती अपनी धँसुती से रक्त की बूंद निकाल उग्राह बढ़ाने हेतु यह कहते हुए भट विजय-तिलक लगा दिया—

आवा मेरा बोर सिपाही

सगी लून की पिटाई—मेरा सिपें जी ।

मेरो पात्र घम ई था

छवा देता का सिपाही—मेरा सिपें जी ॥

—मेरे रणधीर पति ! मैं आपकी विजय-तिलक लगाती हूँ। मोह और भाषाबास से निकलकर मुझे अपना घम साफ दिखाई देता है भतः मैं अपने प्राण-त्रिय घन को मानुभूमि के चरणों में घाँस करती हूँ।

उसे मान हो आया कि उसकी प्रणिष्टा को तालिमा उन बल और भी अधिक भमनेगी जब उसका पति विजययी लेकर वापस लौटेगा। साथ ही यह भी गपान आया, ऐसा न हो जाय कि उसका प्यारा घन लून से मिटने बल, सहज सुलभ सांसारिक सुखों की बुरी दासना को मन में धर, मोह-भमना के कारण विचलित हो आय, इसलिए पुनः शरण होकर बहने लगी—

बिला न के की घन मंग सावा

धीरज धीरी लहं म आवा ।

करतल अपनाओं के की दिनावा

गबल मुमन सी नाथ बमावा ।

हे मानुभूमि ! तू तिरताज

भेट ब लें व मुहाल पात्र ॥

—मान गी ! आपके पतिव चरणों में मैं अपना तरेख घाँस करती हूँ। मेरे त्रिय ! मन में बिगी तरह का पिक मन करना, रण में धैर्य और धीरता से लड़ लून के दाँव लट्टे करना, वहीं विचलित न हो जाना।

यदि सलुमार विजययी शरण कर लौटने का कौमाय मिने को अमर धीर दरबानमिह और अमर लट्टीध धी मुमन की भाँति नाथ बमाकर आता। (दरबानी धीर दरबानमिह के सिद्धपुत्र में मरुतोपल्ल विजयोल्लास जोग पाता का)

अर्यन-मुद्र से काम छोड़े दरबानी धीरी के कण्ठ हलने दलुओतरी-

यात्रा में जाते समय चौपरी चट्टी के पास देखा, दो मिनट मौन श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

जन्मभूमि पर भाये संकट के समय गृहदेशीय सैनिक ने केवल मर-मिटना सीखा, देश के हित मरना वह धरना कर्तव्य एवं गौरव मानता है। पर्वतीय लोक-जीवन की यात्री, इस कर्मभूमि को ऊँचा करनेवाले सैन्य-भावना के ये लोक-गीत देश-भक्ति के प्रेरणा-स्रोत हैं। पवित्र मंशकिनी घोर कालिन्दी के समान ये भावधारणें गढ़ प्रदेश की प्रत्येक घाटी में बहती हैं। प्राणों को देशार्पण करने की स्पृहा पुलक-मुलक में समाई रहती है।

तेरी गोदी कु त्वे यं मां
कन के मोल भी द्यूँ ली।
फरी का देश की सेवा
मि अपनी जान दे द्यूँ ली॥

—माँ ! तेरी मुखदायी गोद में जन्म लेने का कर्जा मैं कैसे चुका सकूँगा ! मुझे तो केवल एक ही रास्ता दिखाई देता है कि तुम्हारी सेवा ही दिन-रैन तन-मन-धन से करूँ। अम्मे ! जब तेरे लिए बलिदान करने का वरत आयेगा तो मैं कदापि पीछे नहीं रहूँगा।

विजयसिंह अपनी हँसमुखी मोहनी से जिलक सगवा, बिदा हो, नमराज हिमालय के बर्फालि उत्तुंग शृंगों पर जा, हमलावरों की खदेड़, पारितोषिक पा, हवलदार बन अपनी प्रिया को पत्र लिखता है—

मेरा साटा कासा लिताई पिलाई,
अम्मे रु में तो लिताई पड़ाई।
मेरा प्यारी बेटा होलूँ जवान,
भरती करं दे देश क बान॥

—प्रिय मोहनी ! मेरे घेटों को पढ़ा-लिखाकर जवान बनाना और भारत माँ की सेवार्थ सेना में मर्ती करवा देना।

उक्त पत्र को पढ़ नवला मोहनी हृष्य-मान हो गई तथा चारों ओर से एक उदात्त गंभीर स्वर गुँज उठा—“धन्य सैनिक !”

पर्वतों की सन्तानें अपने गाँवों, चारों, पर्वतों, घाटियों, झरनों तथा पशु-पक्षियों के संग अपना गौरवमयी जीवन निर्वाह करते हैं। दूमरी घोर बठिन संघर्षमय पार्वत्य जीवन निहारते-निहारते भी वे अपनी स्वाभाविक मधुरता और प्राकृतिक तादात्म्य को नहीं छो बैठते।

प्रकृति और राष्ट्र की स्थिति के समीप गढ़वाली लोगगीतां में महत्त्व में ही मिल जाते हैं। मोन्दर्यमयी घरनी पर मानव के विरचते चरण ‘सरारों’

सैनिक नृत्य की भी मृष्टि करते हैं । राष्ट्र-सेवा एवं सैन्य-भावना का प्राधिक्य ही गढ़वाली लोकगीतों की प्रधानता है ।

यद्यपि राजस्थान के रणबाहुरों एवं बीरांगनाओं ने समय-समय पर अपनी वीरता प्रदर्शित कर शत्रुओं के दाँत सटूटे किये हैं तथापि लोकगीत तो सैन्य-भावना से धून्य ही दिसाई देते हैं ।

अतः मद्रभूमि के लेखकों से सादर नम्र निवेदन है कि उक्त गीतों की भाँति राजस्थानी गीतों में सैन्य-भावना का घुट हो तो यहाँ के बच्चे-बच्चे और चप्पे-चप्पे में एक नव जागृति, नवचेतना की नव्य सहर का संचार हो, राजस्थान का चतुर्दिक उत्थान और विकास हो जाय तथा इसकी हयाति और भी अधिक बढ़ जाय—ऐसी मेरी धारणा है ।

भारत राष्ट्र की भाषाओं में भावात्मक एकता के स्वर

□

श्रीनन्दन चतुर्वेदी

भारत राष्ट्र की समस्त भाषाएँ वे प्रवहमान दुर्धर पयस्विनिपा हैं जिनकी जल-शोधियों में एकता के स्वर गूँज रहे हैं। भावात्मक एकता की पावन ध्वनि ने विविध भाषाओं का शक्तिमान माध्यम लेकर बेमर की बपारियों से कन्याकुमारी तक तथा छटक से कटक तक हम देश के भूगोल से जन-भावना को सुदृढ़ मूत्र में बाँध दिया है।

भावात्मक एकता के स्वरों की परम्परा ठेठ वैदिक संस्कृत से बती है। पृथिवीसूक्त (अथर्व वेद—१२वाँ कांड) में ऋषि धरती माता पर सब-कुछ बलि देने के शुभ उद्यम में लगने की पावन कामना करता है। ऋग्वेद के ऋषि का कथन है—

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनीसि जानताम् ।

देवा भागं यथापूर्वं सं जानानां उपासते ॥

समानी वा प्राकूतिः समाना हृदयानि यः ।

समानमस्तु वो मनो यथा यः सु सहासति ॥

—ऋग्वेद १०।१६।१२

अर्थात्—हे मनुष्यो ! परस्पर मिलकर रहो, परस्पर संवाद करो। तुम्हारे मन एक-दूसरे से मिले हों, यही तुम्हारा कर्तव्य है। पूज्य देवगण भी परस्पर मिलकर संसार को चलाने में अपना कर्तव्य सम्पादित कर रहे हैं। तुम एक साथ चलो, एक-सा बोली, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे मन समान हों।

इसी प्रकार यजुर्वेद ३६/१८ में कहा गया है कि सब लोग मुझको मित्र-दृष्टि से देखें। सबको मैं मित्र-दृष्टि से देखूँ। उपनिषदों में अनेकानेक स्थानों पर 'सर्वं भूतानां रात्मा' की चर्चा मिलती है।

वैदिक ऋषि ने बड़ी उदारतापूर्वक धराधाम के सम्पूर्ण जीवों में समन्वय-स्थापना का उद्यम किया था। भारत मात्र ही नहीं, विश्व की भावात्मक एकता

में वैदिक ऋषियों का योग अविस्मरणीय है।

वैदिक संस्कृत के पीछे यही कार्य लौकिक संस्कृत द्वारा संपन्न हुआ जिसमें धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से घर-घर झलक जगाया गया।

महर्षि वाल्मीकि की उक्ति 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ हैं, तथा विष्णुपुराण के रचयिता की उक्ति—

सायन्ति देवाः कितपीतिकानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे ।
स्वर्गारिर्वास्पद मार्ग भूते,
भवन्ति भूमः पुरुषा मुरतवात् ॥

—विष्णुपुराण २/३/२४

अर्थात्—देवगण निरंतर एही कामना करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और मुक्ति-मुख के साधनभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे भारतीय हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं। राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से भाषा का कितना मुद्दू आधार प्रदान करती है।

वायुपुराण का रचयिता जब कहता है कि—

उत्तरं पत्तमुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणाम्
वर्षे तद् भारत नाम भारती यत्र सन्तति

तब वह भाषा के माध्यम से बिनने बड़े भू-भाग के लोगों को एकता का आधार दे देता है।

गंगा च यमुना चैव गोदावरि सरस्वतो,
ममेदा त्रित्यु कावेरी जलेऽस्मिन् संनिधं बुध ।

तथा—

अयोध्या भाषा मधुरा, काशी काञ्ची अवन्तिका,
पूरी इरावती चैव सप्तंता मौल साधिका ।”

के उद्घोषक दूरदृष्टा वीरगणिकों एवं संस्कृत भाषा के उत्तरवर्ती साहित्य-कारों ने भूत भूगोल से प्रभूत भावना का समन्वय कर जहाँ जन-जन के बीच की खाई पाटी वही उन समंग राष्ट्रीयता को मुद्दू स्वरूप दिया जो भूमि, जन और संस्कृति त्रि-आयामी आधार निये लड़ी थी।

संस्कृत के बाद पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के माध्यम से देश की भावात्मक एकता पुष्ट हुई। बौद्धों की जातककथा में जैतियों की उपदेश-परक कथाएँ तथा दूसरा सर्व सम्धारण के मन की छूनेवाला साहित्य देश के जन-जन को सन्निकट लाता रहा। यह साहित्य किसी जाति या वर्ग विशेष का न रहकर सम्पूर्ण मनुष्य-समाज की निधि बन गया।

भारत राष्ट्र की भाषाओं में भावात्मक एकता के स्वर

□
श्रीनन्दन चतुर्वेदी

भारत राष्ट्र की समस्त भाषाएँ वे प्रवहमान दुर्धर पयस्विनियों हैं जिन जल-बीधियों में एकता के स्वर गूँज रहे हैं। भावात्मक एकता की पावन ध्वनि ने विविध भाषाओं का सन्निभान माध्यम लेकर नैसर की क्यारियों कन्याकुमारी तक तथा घटक से कटक तक इस देश के भूगोल से जन-भाषना सुदृढ़ ध्रुव में बाँध दिया है।

भावात्मक एकता के स्वरों की परम्परा टेढ़े वैदिक संस्कृत से पवित्र पृथिवीसूक्त (अथर्व वेद—१२वाँ कांड) में ऋषि धरती माता पर सप्त-गुण देने के शुभ उद्यम में सपने की पावन कामना करता है। ऋग्वेद के ऋषि कथन है—

संगच्छन्तं संवदन्तं संवो मनांसि जानताम् ।
देवा भावं यथापूर्वं सं जानानां उपासते ॥
समानो वा साकृतिः समाना हवयानि वा ।
समानमस्तु वो मनो यथा वाः सु सहासति ॥

—ऋग्वेद १०।१११।

अर्थात्—हे मनुष्यों ! परस्पर मिलकर रहो, परस्पर संवाद करो। तुम मन एक-दूसरे से मिलते ।

कर्तव्य है। पूज्य देवगण भी परस्पर सम्पादन कर रहे हैं। तुम हों, तुम्हारे मन समान हों। गया है कि सब लोग मुझसे मिले । उपनिषदों में प्रनेतानेक रूप

धराधाम के सम्पूर्ण जीवों में स्वयं की भावात्मक एकता

में वैदिक ऋषियों का योग अविस्मरणीय है।

वैदिक संस्कृत के पीछे यही कार्य लौकिक संस्कृत द्वारा संपन्न हुआ जिसमें धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से घर-घर भ्रमर जगाया गया।

महाविद्यालय की उक्ति 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ हैं, तथा विष्णुपुराण के रचयिता की उक्ति—

गायन्ति देवाः कितमीतिकानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे !
स्वर्गादप्युत्तमं भागं भूते,
भवन्ति भूमः पुरुषा सुरत्वात् ॥

—विष्णुपुराण २/३/२४

अर्थात्—देवताएं निरंतर यही कामना करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और मुक्ति-मुक्त के साधनभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे भारतीय हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं। राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से भाषा का कितना सुदृढ़ आधार प्रदान करती है।

वायुपुराण का रचयिता जब कहता है कि—

उत्तरं यत्समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव इक्षिणाम्
यत्ते तद् भारत नाम भारती यत्र सन्ति

तब वह भाषा के माध्यम से बितने बड़े भू-भाग के लोगों की एकता का आधार दे देता है।

गंगा च यमुना चैव गोदावरि सरस्वती,
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेऽपि न संनिधं कुव।

तथा—

अयोध्या भाषा मयूरा, काशी काञ्ची अवन्तिवा,
पुरी हारावती चैव सप्तंता मोक्षदायिका।”

के उद्घोषक दूरदृष्टा पीछेकी एवं संस्कृत भाषा के उत्तरवर्ती साहित्य-कारों ने मूर्त भूगोल से भूमूर्त भावना का सम्बन्ध कर जहाँ जन-जन के बीच की साईं पाटी रही उस अमंग राष्ट्रीयता को सुदृढ़ स्वरूप दिया जो भूमि, जन और संस्कृति त्रि-भाषायामी आधार लिये लड़ी थी।

संस्कृत के बाद पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के माध्यम से देश की भावात्मक एकता पुष्ट हुई। बौद्धों की जातककथा में जंतियों की उपदेश-परक कथाएँ तथा दूसरा सर्व साधारण के मन को छूनेवाला साहित्य देश के जन-जन को सन्निकट लाता रहा। यह साहित्य किसी जाति या वर्ग विशेष का न रहकर सम्पूर्ण मनुष्य-समाज की निधि बन गया।

गरी बोसी हिन्दी के प्रिय में बहुत पूर्ण ही पूरव से पश्चिम तक समूचे भारत की सम्पूर्ण भाषाओं में बड़े-बड़े बुजुर्ग कर दिए थे तिनकी छाह में देश का जन-जीवन बर्ताव पिटारा रहा ।

उत्तर से दक्षिण और पूरव से पश्चिम तक माने गये से देश की धरती माननेवाले मनमौजी संतों की 'सधुकराई' भाषा भी भावात्मक एकता में कम योगदायी नहीं रही । इन संतों ने जिस तरह छोटे-बड़े धाड़मी को धमनाकर बर्ग-हीन समाज की स्थापना की, उसी तरह देश की हर भाषा की शब्दावली को भी धमनाकर सर्वगुणम भाषा की गृष्टि की । संतों की भाषा बहना गंगावन थी, जिसमें जो भी नहाया, धरने भेद-भाव का मत गया गया; भावात्मक एकता के रंग में रम गया । गुरु ज्ञानेश्वर ने 'सर्वापटी राम देहा देही एक' कहकर इसी एकता का प्रतिपादन किया है । गोरस ने, सिद्धों ने तथा सरहगाद ने भी भाषा के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति के बीच भेद को दिलाया था । बहीर जी के शब्दों में भावना की कितनी एकता जुड़ी है—

हिन्दू से राम, मुस्लिम तुलक से बहुत बिधि करत बजाना,

तुलक को संगम एक जहाँ तहाँ मेरा मन माना ।

गुरु नानक जी भी ऐसी ही बात कहते हैं—

ना हम हिन्दू ना मुसलमान,

बोनो बिषय बसै ज्ञान,

एक एकी एक सुमान ।

महान संत धना कहते हैं—

राम कहो, रहमान कहो,

कोई कान्ह कहो महादेव री

पारसनाथ कहो ब्रह्मा,

सकल ब्रह्म स्वयंसेवरी ।

यहाँ तो वैष्णव, साँव, जैन, भट्टी और मुसलमान—सभी के बीच भेद स्थापित किया गया है ।

इसी प्रकार की बात गरीबदास, दरिया साहब, तुकाराम, रंदास, धरणी आदि संतों ने भी कही है । समर्थ गुरु रामदास ने भी अपनी भाषा से भावात्मक एकता के सेतुबंध को पुष्ट किया है ।

सधुकराई के बाद भावात्मक एकता की यह बोली उत्तर भारत में पहाड़ी, डोगरी, पंजाबी, लहँदा, सिन्धी, पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी (अर्थात् छोटी बोली, बांगरु, ब्रज, धवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मगही, मैदानी, भोजपुरी, उड़िया), असमी, बंगाली, गुजराती, उर्दू तथा दक्षिण में मराठी, कन्नड़, मलयालम,

तमिल, तेलुगु आदि राष्ट्रीय भाषाओं के सख्ता-जल से सिंचित होकर पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुई।

मुलसीदास का 'रामचरितमानस' इस दिशा में सुनियोजित ढंग से सम्पादित भवषी भाषा का बहुत बड़ा अभिमान था। गुरु, मीरा व नरोत्तमदास आदि भक्तों की भावधारा केवल उनकी नहीं, भारत के जन-जन की निधियाँ थीं।

'मुरसरि सम सब कहै हित होई' की उक्ति जन-कल्याण और समष्टिगत सुख की कितनी विपद भावना से प्रोत-प्रोण थी।

भावत्मक एकता की पुष्पनीया वीथियाँ विविध भाषाओं की सहज-गति-सख्ताओं में अविरल देग से सतत बहती हुई आज के युग तक जन-मानस को नहलाती रही और इस पुष्पवर्ष में उत्तर व दक्षिण की समस्त भाषाओं, बिभाषाओं व बोलीयों का योग रहा।

भारत राष्ट्र की भावत्मक एकता को तमिल-भाषी सुबह्यभ्य भारती कितना योग दे रहे थे, जब वे कह रहे थे—

"हमारी भारत माता कोटि-कोटि मुलवाली है किन्तु उसमें निहित प्राण तो एक ही है। यद्यपि यह भट्ठाह भाषाएँ बोलती हैं तथापि उसकी मूल धारा तो एक ही है।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है—

हे मोर बिल, पुष्पतीर्ष आगो रे घोरे,
एई भारतेर महा मानवेर सागर सोरे।
बेह माहि जाने, बार आह्मने बल मानवेर पाठ,
दुर्बार लोते एलो, बो जा हते, समुदे हलो हार।
हे बाय बाय, हेबा बनार्य, हे बाय इबिड़, बीन,
राज-रुज इन-मादान-मोगन एह बेहे हलोमोन।
एन बारा बाहि, जय मान बाहि, उम्माद बतरवे,
मेदि मक-मक, गिरि पबंत मारा एगे टिले सवे।
तारा और माधे सवाई बिराजे बेरो महे महे दूर,
आमार सोजिने रयेछे रचनित तारि बिबिध मूर।

अर्थात्—हे मेरे हृदय ! इस महा मानवता के उदबिन्दुर भारत देग में धीमे-धीमे धड़ा के साथ आनरण कर। कोई नहीं जानता बिलके आह्वान पर समुप्यता की बिजली धाराएँ दुर्धर देव से उर्ध्वह्व होती हुई वही घापी और एन बिनाल सागर से समाहित हो गई। बाय, बनार्य, इबिड़, बीनी, राज, रुज, पदान, मुदन आदि सभी इस धरणी पर एक साथ मिल गए हैं। एन की बाछन बहने, उम्माद के बतरब में उदगम माने हुए, मकमक को पार करने और चरती को लींचे हुए जो लोव उन्माहुरेक इन देग में आए थे, उनका सब बही कोई

पृथक् अस्तित्व नहीं रहा। वे सब-के-सब मेरे अंतर में विराजते हैं। कोई दूर नहीं है। मेरे शोणित में रमा हुआ उन सबका स्वर ध्वनित हो रहा है।

मलयालम के कवि श्री उल्लूक एस० परमेश्वर अय्यर कहते हैं—

इमर इतोप्पिले तैमणिका टिटे,
ममर वाक्पतिलयं मेत्तो ?
एन्नयल्कार निलनिन्नुमान,
भिन्न नेन्लेन्वंडु निनितु वगुरप्पू।

अर्थात्—विपिन के बीच मारुत के शब्दों का क्या अर्थ है ! पवन आता हुआ यही कहता है कि मैं भीर मेरा पड़ोसी भिन्न नहीं है।

मलयालम के ही दूसरे कवि श्री बल्लत्तोल कहते हैं—

कंकपुकित्तुड्पुक्कुको कोट्टि मेडु कानु,
नम्मळ नूट्टा नूत कोण्डुम नम्मल नेम्ता-वन्नम्,
कोण्डुम्

जिसका भाष्य है कि भारतमाता की पावन कोस से जन्मे सभी भारतीय भाई-भाई हैं। अपने शक्तिमान हाथों में इस पवित्र ध्वज को धामे-धामे, भागो ! हम सब भागे बढ़ते जाएँ।

पंजाबी के कवि गोहर का कथन है—

मिले दितानुं काहनुं बिछोड़ नाई,
जेकर बिछड़ूयां नइमों मिलाना जोणा।

अर्थात्—यदि तुझ में बिछड़ें दितों को मिलाने को सामर्थ्य नहीं है तो मिले हुए दितों को क्यों फोड़ रहा है ?

इसी प्रकार की एकतापूर्वक उन्नतियाँ मोगरी भाषा के कवियों-लेखकों में मिलती हैं, ऐसी ही उड़िया के कवियों में तथा इसी भाव की प्रेरक उत्तियाँ भारत की अन्य समस्त भाषाओं में देखी जा सकती हैं।

‘बंदेमातरम’ का प्रातःस्मरणीय भावपूर्ण उद्बोधक-मंत्र, ‘भरण यह मधुमय देव हमारा’ का कल-कल-स्वर, ‘सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा’ का प्रेरणादायक गारा, ‘मुरमोड़ ये भी अनुभव अधियों ने जितने भाया’, ‘बहु मानुभूमि मेरी बहु गिनुभूमि मेरी’ की उद्बोधक भाषी और ‘तन समर्पित, मन समर्पित और यह जीवन समर्पित, चाहता हूँ—देव की परती, तुझे कुछ और भी हूँ’ (रामावतार त्पायी) का समर्पण-भाव भावात्मक एकता की छद्मीय भाषाओं का उद्गार है।

विभिन्न भाषाओं की शीतस्वदियों में भावात्मक एकता की ये वाचन की-बिपी सज्जन सज्जिन होनी रही, होनी ही रहेगी अतन्त्रकाल तक जब तक वह अनन्त देव—भारत राष्ट्र जीता है।

देख कबीरा रोया

□

गुलाबचन्द रांका

शिक्षा का स्तर गिर रहा है। स्कूलों में अनुशासन नहीं रहा। शिक्षा-नीति में प्राथमिक परिवर्तन प्रोत्थित है। प्रमुख विद्यालय का प्रतिष्ठान परीक्षा परिणाम निराला सोचनीय रहा। प्रध्यापक पढ़ाने-लिखाने नहीं। छात्रकल के बाहे के शिक्षक घोर बाहे के स्कूल ? सब कतूतरमाने हैं। ऐसे घनेक शब्दवाण भाए-दिन दलनेतायो, अधिकाारी वर्ग, वहाँ तक कि बन्नी-बन्नी शिक्षा-अगन से घन-मिश्र, साधारण बँटे-उने प्रामीणों द्वारा भी छोड़े जाते रहे हैं। घोर इन सभी शब्द-बाणों की निर्दिष्टा की घीत होना है सपना या साधारण किन्तु शिक्षा-अगन का प्रसाधारण शिक्षक, मारटर, प्रध्यापक।

प्रजापुत्र में गुणों की परेक्षा सबगुणों पर दृष्टि दीक अमनी दिखाई देती है। अधिकाार घनरते हैं। कर्मियों के नामे जानून मावर्तमनी चलने चलते जाते हैं। बँबास शिक्षक-वर्ग हमने अरुणा बना जाना है, बना जा रहा है, घोर न जाने कब तक अरुणा बना जायेगा ? दोहरी के इन बीर की न सीमा सीमनी है, न घनत।

शिक्षक का काम है शिक्षा-प्रसारण, पढ़ाना-लिखाना, समाज की नबनीकी को शिक्षित एवं सुमन्युता करना। बन, यही क्या काम काम है ? क्या कम जिम्मेवारी है ? किन्तु यह किये पता है कि जो मार शिक्षक को सीसा जाना चाहिए, वस्तुतः उने मौनता ही घीत है ? शिक्षा-नीति निर्धारित करे कोई संको, संबाधन करे कोई सावरेणर, पुस्तकें लिखे के जो उन बशाषों में पढ़ाना लो दूर—एक सन बभी किसी बशा में सके तक नहीं रहे। पर शिक्षक-कार्य करे शिक्षक। बँता शिक्षक ? जो जीवन-भर पढ़ाया रहा, किन्तु उसके घनने बिच में उमरी घरकी बशाषों के पाठ्यपत्र-निर्माण में उमरा कोई हाथ नहीं, उमरी कोई पूछ नहीं। बरी ? शिक्षक जो है। सरकारी भोकर है। विभागीय पचाप (बँपटर) की घरी पर मुई की मार चुलाई में कई भाग तक घुमाना जाना है।

इन भाग शिक्षक का सांकेतिक रूप से घरबाउ-भान घीत है, किन्तु

मानसिक रूप से इन दिनों यह स्थानान्तर रोग से ग्रसित हो जाता है। भाषणों-व्याख्यानों में बहुधा गुनते हैं कि स्थानान्तर आदि कार्य जून तक हो ही जाने चाहिए। किन्तु इस चाहिए का भीर बढ़ता ही जाता है। जुलाई, अगस्त, सितम्बर—न जाने किस माह तक आदेशों की इन्तजार करनी पड़ेगी। अब तक प्रेर-प्रमोशन होगा ? कोई सर्वमान्य नियम नहीं है। स्थानान्तर चाहा ही नहीं था, हो गया। कैसे कैगिल कराऊँ ? जान-बूझा नहीं, कहीं पहुँच भी नहीं। मन मार घेंटा। ऐसा शिक्षक क्या छाक पड़ावेगा ?

स्कूल खुल गए। पुस्तकें बदल गईं। पुस्तकें छप रही हैं। बाजार में नहीं आयीं। शिक्षक क्या करें ? तब तक सामान्य ज्ञान-वर्षा करें। मौखिक ज्ञान दें। कोर्स सम्मत्, पुस्तकें उपलब्ध नहीं, परीक्षा समीप, परिणाम स्वतः स्पष्ट। किन्तु दोषी शिक्षक ! “स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व शिक्षक जो शिक्षक था, आज नहीं रहा।” कुछ लोग कहते सुने जाते हैं। ठीक ही तो कहते हैं।

पहले ग्राम चुनाव नहीं होते थे, पंचायत-चुनाव नहीं होते थे। अध्यापक अपना मुख्य काम पढ़ाना छोड़कर चुनाव के चक्कर में स्कूलें बंद नहीं रखते थे। किन्तु आज बेचारे शिक्षक की भली बनी है। जनगणना में शिक्षक, पशु-गणना में शिक्षक, उप-चुनाव में शिक्षक, प्रोढ़-शिक्षा-प्रसारण में शिक्षक, नृसारोपण में शिक्षक, उद्योग पर्व-संवादन में शिक्षक, छात्रवृद्धि-समिपान तथा ‘स्कूल चलो आन्दोलन’ में शिक्षक—सर्वत्र शिक्षक-ही-शिक्षक ! फिर भी शिक्षण-कार्य तो है ही।

किसी प्रकार इनसे निवृत्त हुए तो फिर शाला टूर्नामेंट, वार्षिकोत्सव की तैयारी, जयतिर्पा, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय त्योहारों को मनाने की श्रृंखला शिक्षक को जकड़े रहती है। बीच-बीच में सेमिनार, कार्यशाला, अभिनवन-प्रशिक्षण आदि की कड़ियाँ शिक्षक-कार्य-भार-श्रृंखला को सम्बाई में श्रीवृद्धि करती चली जाती हैं।

शोग फिर भी कहते हैं—अध्यापकों के पास सिवाय पढ़ाने के काम ही क्या है ? घरे, केवल पढ़ाने के लिए उसे छोड़ता ही कौन है ? माए-दिन रेड-क्रॉस की भण्डियाँ, शिक्षक-दिवस की भण्डियाँ बेचना भी तो उसी को है। कहीं स्काउट भवन बन रहा है, चन्दा एकत्रित करे शिक्षक ! जिले के अस्पताल का विकास ही रहा है, स्कूल-भवन बन रहा है, चन्दा बटोरे शिक्षक !

इस प्रकार आज का शिक्षक एक शिक्षक ही नहीं, वह एक किसान भी है, जो स्थानान्तर, तरबकी के राजकीय आदेशों के सुभावने बादलों की इन्तजार में सदैव घासमान की ओर टकटकी लगाए रहता है। वह एक मजदूर है जो घर-घर घूमकर गणना-कार्य किया करता है। वह एक माली है जो नृसारोपण करता है। वह एक नट है जो विद्यालय-मंच पर सदैव उपस्थित रहता है। वह एक व्यापारी (शेल्समैन) है जो भण्डियाँ बेचा करता है, और तो और वह एक

खोमनेवाला है जो सोपहर को स्कूल के ग्राहते में पकौड़े निकाला करता है ।

इन सब कार्यों के करते रहते हुए भी वह समाज में शिक्षण-कार्य भी करता है । वेतन उसको शिक्षण-कार्य के नाम पर दिया जाता है, पर कार्य उससे दूसरे भी लिए जाते हैं । फिर भी वह अपना कार्य मुस्तैदी से करता है । विद्यालय में नियमित रूप से उपस्थित होता है, नियमित रूप से दायरियाँ भरता है, पाठन-कार्य का लेखा वार्षिक, मासिक व दैनिक रखता है । फिर पाठन-कार्य निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार नियमित रूप से करता है । छात्रों के लेखन-कार्य की जाँच करता है । बागों और हाथ दिन-रात विधाम नहीं लेते । भूकान उसे नहीं घाती ! क्योंकि वह मानव नहीं, मशीन है । मशीन के पुर्जों भी तेल माँगते हैं, सफाई चाहते हैं, पर शिक्षक की कौन सुनता है ? 'शिक्षक समाज का निर्माता है', उसका निर्माण कौन करे ! छात्रों को बहता है, बतलाता है, प्रत्येक बालक को इतनी कंठोरी चाहिए, इतने विटामिन चाहिए, इतनी फेंट चाहिए, इतनी मात्रा में दूध, दही, मक्खन, घी, फल और हरी सब्जियाँ चाहिए । पर शिक्षक को स्वयं क्या और कितना चाहिए ? न समाज ने इस ओर कभी सोचा, न सरकार ही सोचने का प्रयास करती है । पर शिक्षक बेचारा जैसे-जैसे अपना कार्य करता चला जाता है । कभी बीमार, तो कभी बच्ची की शादी, तो कभी माता-पिता की मृत्युवश भवकाश ग्रहण करने को बाध्य हो जाता है और एक दिन वह भी घा जाता है, जब विभाग की सेवा करते-करते उसे पचपन वर्ष पूरे हो जाते हैं । उसकी सेवाओं के प्रतिकार में वह नजारा भी देखते ही बनता है जब वह दफ्तर के बाबुओं के सामने अपने भवकाश की मजूरी, वार्षिक वेतन, मृद्धि, पेंशन केस की पूर्ति के लिए चतुर्थे श्रेणी कर्मचारी के रूप में खड़ा गिड़गिड़ाया करता है । समाज के जिस कारखाने से ये बाबू निकले, ये दफ्तर बने, वे इस बात को कुछ देर के लिए न जाने क्यों भूल जाते हैं कि अन्ततः वे सब उस कारखाने की प्रोदक्शन हैं, पैदावार हैं जिनके निर्माता मात्र स्वयं उनके सामने खड़े हैं और वे कुतियाँ तोड़ रहे हैं । बेचारा सहनशील शिक्षक इन सबको सहन करता चला जाता है, फिर भी ताड़ना मिलती है—धर्य नहीं है, सब नहीं है ।

समाज में मात्र शिक्षक की स्थिति तांगे के धोड़े-जैसी है, जो न बाएँ देख सकता है, न दाएँ । उसे निरंतर सीधे अपने कर्तव्य-मय पर सरपट भागते रहना पड़ता है । समाज में मामूली-से वेतन पर अपने दादा-दादी, माता-पिता, स्त्री-संतान का भरण-पोषण करे तो कैसे ? यही एक प्रश्नबिह्व सदा-सर्वदा उसके सामने बना रहता है । मामूली-से वेतन के अतिरिक्त उसके भ्रातृ के खेत नहीं । द्यूशन की बात उन मुट्ठी-भर शिक्षकों पर लागू हो सकती है जो शहरों में लगे हुए हैं, अन्यथा अधिकांश शिक्षक ऐसे क्षेत्रों में जीवनदापन कर रहे हैं जहाँ द्यूशन खुलकर विधाम कर रही है । भवकाश के क्षणों में अध्यापक को भर्त्स-

पार्जन करने की राज्य की ओर से कोई सुविधा नहीं; उल्टे किसी काम पर मजबूरीबश लग जाने पर सरकारी कर्मचारी होने के नाते अर्थोपार्जन नहीं करने दिया जाता। यह कैसा विधान है, कैसी व्यवस्था? अपने और अपनी संतान के पेट के लिए जब यह वेतन-बुद्धि की माँग करता है, मंहमाई-मत्ते की याचना करता है तो उसका मुँह बंद करने के लिए सरकार उसे ऐसे कमीशन के मरोने छोड़ देती है जो सासों-नास रुपये अपने दफ्तर पर खर्च कर उसे देता है पाँच या दस रुपयों की माधूली-सी तरफ़ी। फिर कमीशन भी ऐसे जिन्होंने शिक्षक-जीवन को न कभी देखा, न कभी अनुभव किया। एक वर्ष का सेवारत नया शिक्षक और बीस-पच्चीस वर्ष का सेवारत पुराना शिक्षक—सब बराबर। समानता के सिद्धान्त का अक्षरशः पालन करनेवाले यह न्यायाधीश अपनी न्याय की तराजू क्या उस समय भी अपने साथ रखते हैं जब मंत्रियों के सड़कों की शानदार शादियों में हजारों रुपये मात्र महफिलों में होम दिये जाते हैं। अधिकारियों के मालीगान बंगले खड़े हो जाते हैं। और तो और, पी. डब्ल्यू. डी., सिचार्ड, पुतिस, राजस्व, आदि अनेकानेक विभागों में कार्यरत ऐसे अफसर और कर्मचारी जिनका वेतन शायद एक वरिष्ठ अध्यापक से कम ही होगा, पर शादी, समारोह, सामाजिक उत्सवों में केवल बिजली की रोशनी पर संकड़ों का बिल चुकता होता है। राज्य की ओर से उनके लिए ऐसी क्या व्यवस्था हो सकती है जिनसे वे इतना अर्थो-पार्जन कर सकें और शिक्षक बेचारा अपने भाग्य को कोसता रहे। भाग्य की यह कैसी विदम्बना है?

भाजकल एक और फँसान चल पड़ा है, शिक्षक और उसके पूर्वजों का एक और उपहास-अभियान का श्रीगणेश हो चुका है। 'मापो गुह!', 'वैठो गुह!', 'क्यों गुह, क्या बात है?'—इस प्रकार के वाक्य-उन्चारण समर्थ गुह रामदास को गुह मानकर शिवाजी नहीं, और गजेबी सबके के माधूली साधारण श्रेणी के ईर्ष्यातु प्राणी किया करते हैं जिन्हें न गुह की गरिमा का ज्ञान है, न उसके पद की जानकारी। पाय के आधुनिक प्याले की तरह बेचारा गुह हाट-होटलों में स्वच्छन्द रूप से सबका तकिया-कलाम बना हुआ है। उसका अपना कोई तकिया नहीं, यह भी कोई शिक्षक ही का दोष है? समाज और सरकार की चक्की के दो पाटों के बीच घात्र के शिक्षक को पिस्तौ देतकर बरबस कबीर की उन पंक्तियों का स्मरण हो आता है—

घसतौ चक्की बेसकर, दिया कबीरा रोय,
दो पाटन के बीच में, साबित क्या न कोय।

भात्र शिक्षक को सुखे और कोरे आदवासनों से सड़ाया जाता है। समाज के निर्मातामान के नारों से भ्रमिल किया जाता है। उसकी सुख-सुविधा, साधन-सम्मान के अधिकार मृगतृष्णा बने हुए हैं। गुह वशिष्ठ, विरबामित्र, परशुराम,

द्रोणाचार्य एवं श्रुपि भारद्वाज की ये संतानें भाज न केवल पीड़ित, शोषित एवं संकटग्रस्त हैं अपितु भनाज जैसी आवश्यक वस्तु की गारण्टी तक प्राप्त नहीं हैं— समाज की इस विकृतावस्था में संतरी से लगाकर मंत्री तक चैन की बंशी बजा रहा है। वही शिषक की करुण पुकार नक्क़ारखाने में तूती की भावाज सिद्ध हो रही है। कौन सुने शिषक की करुण पुकार ? सब मस्त पर शिषक वस्त !

लोगों का जीवन-स्तर बहुत ऊँचा है, बैल बॉटम, लम्बे कॉलरों की कमीज, स्लेक्स, पैंतल, नादटी, शराश, शराश, एलीकेण्टा मेरे देश की राष्ट्रीय पोशाक है। यहाँ कोई गंगा नहीं, कोई भूखा नहीं कोई गरीब नहीं। कभी-कभी पत्रिकाओं में यह भी आ जाता है ठीक उसी तरह मानो कोई घमौर साल में एकाध बार अपनी घमोरी का स्वाद बदलने गरीब का मुझीटा धारण कर ले। मेरा देश दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कानपुर, सखनऊ, इलाहाबाद में ही सिमटकर रह गया है, वह भी केवल भय्य भवनो तक। लाजमहल, सन एण्ड सेंड होटल तक, या झोका तक। मेरे देश में लीडो है जहाँ ग्राम की गाय साढ़े छह घोर डिग्री दस रुपये का मिलता है। पत्रिकाओं और वनों से तो ऐसा ही लगता है, कि मेरा देश गाँवों से गायब हो गया है या गाँव मेरे देश से गायब हो गये हैं। क्या वास्तव में ऐसा है? तो क्यों आज मेरा घर ग्राम तक भूल से भर जाता है? क्यों मैं ऐसी जगह पर हूँ जहाँ मेरे चारों ओर अधनंगे, भूखे, विषुके चेहरों का जमघट है? क्यों पास से निकले दानों को रोँधकर खानेवाले लोग हैं? और क्यों 'राशन कार्ड' के तीस पैसे के लिए अपना सतीरव बेचनेवाली नारियाँ हैं? आज किसी उपन्यास में न 'गोदान' का होरी है, न 'मैंला पाचल' का डॉक्टर, न 'तीसरी कसम' का हीरामन है, न 'बूढ़ी काकी' की काकी। प्रेमचन्द के बाद रेणु और गणार्जुन या भगवान-स्वरूप 'राग दरबारी' और 'प्राधा गाँव' को छोड़कर कौन-सा उपन्यास है जिसमें मेरा देश या मेरा गाँव हो। देख रहा हूँ गोपल नाँवल स्टोर पर डेर सारे नये धमकमाले उपन्यास धाँपे हैं। ओ सलवा उठा है। लेकिन देख रहा हूँ—प्राधा स्टोर गुलशन नन्दा, साधना प्रतापी, सेखर, राजवंश, कर्नल रंजीत, चन्दर, इन्ने शर्मा, धरम इलाहाबादी, प्रेम काजपेयी से भरा है जिनका हर पात्र अलौकिक, है—कारवाला, बंगलेवाला, करोड़पति होकर गरीब लड़की से प्रेम करनेवाला। कहीं मेरे गाँव की भूमकू लड़ी मिलती जो गोबर बेचकर, लकड़ी बेचकर अपने अपा-हिब पति का पेट भरती है। "नया बेदी की 'एक चादर मैली-सी' मिलेगी?" मेरे पूछने पर दूकानदार हँसता है; आहूँ हँसते हैं। तारा बाबू की 'दुनिया एक बाजार' की प्रति खरीदते समय सब ठहाके लगाते हैं। वे मुझे गुलशन नन्दा पढ़ने की सलाह देते हैं, मैं भूख उनकी सलाह न मानकर उनके शब्दों में उबानेवाले साहित्यकार पढ़ता हूँ। समानान्तर साहित्य से भरे स्टोर्स में अनेक ऐसे लेखक मिल जायेंगे जिनके पात्रों के पास केवल कामकासना की पूर्ति के अतिरिक्त कोई काम नहीं, हर दर्जे की अश्लील किताबें। कथा में एक दिन अचानक छाया भारने पर पाली जैसे छोटे शहर के पन्द्रह-सोलह वर्ष की उम्रवाले लड़कों की पाठ्य-पुस्तकों में से छाठ अश्लील किताबें बरामद हुईं। अश्लील पत्रिकाओं पर रजिस्ट्रेशन नम्बर तक। उपर जोधपुर विरविद्यालय में 'प्राधा गाँव' पर बवण्डर उठ खड़ा हुआ; यद्यपि बवण्डर खड़ा करनेवालों में शायद ही कोई ऐसा हो जिसने अश्लील



एक दिन की डायरी

□

गोपालप्रसाद मृदंगल

मैं बीमार हूँ। सड़कवाले कमरे में बड़ा हूँ। तीन वर्ष का प्रतीत अपनी जिद लिए बंठा है। अपनी मम्मी से सड़ रहा है कि उसने रसोईघर की किवाड़ क्यों लगा दी? इसका बदला वह छोटे पड़्डे को डण्डे मारकर ले रहा है। उसकी मम्मी कह रही है कि किवाड़ मने लगाये हैं, तुम पड़्डे को क्यों मार रहे हो? किन्तु वह अपनी पुन में मस्त है। वह ऐं ऐं ऐं...की रट लगाये है। हाथ-मुँह धुलाने में मुँह फुला रहा है। 'रसोईघर की किवाड़ क्यों लगा दी?' बस, इसी रिकार्ड को बजा रहा है। उसकी मम्मी बार-बार अपनी गलती भान रही है किन्तु उसकी बालहठ सबके सिर पर है और मैं बीमार हूँ।

कमरे में बिड़िया भी-भी-भी-भी बरने में व्यस्त है। कमी इधर और कमी उधर। केवल फुर-फुर और भी-भी की धुन लिए है। कमी तसवीर की किनोर पर पंख खुलानी है, कमी बीच को पैनी करने की चौपटे पर इधर-उधर रदड़ रही है। मैं चाहता हूँ यह छुप हो जाय किन्तु उसे दूसरे के दुःख से क्या। यह तो प्रतीत की तरह भीत माने में मस्त है। कमी तसवीर से गडर पर तो कमी जंगले की तानों में रोमानदान के धार-धार। मेरे न चाहने का उस पर कोई असर नहीं। उसकी किस्सात चल रही है और मैं बीमार हूँ।

कमरे के बाहर मेरे छोटे माई का कमरा बन रहा है। दोनों मिस्त्री पत्थर छाँटने में मस्त हैं। उनके हथौड़े और छेनी की धावाज मेरे माई को खूब रचि रही है, दोनों मिस्त्रियों की रोटी भी सीधी हो रही है किन्तु बर्ण-नटु धावाज ने मेरी नींद हराम कर दी है। सभी को मान्य है कि मैं बीमार हूँ किन्तु उनकी लट-लट और झुट-झुट बदनरु चालू है।

और सीझिए, ईंट खनानेवालों ने तो गमब हो दहा रखा है। ईंट के टुक का भाना-जाना ही कम सिर-ददं नही है, फिर ईंटों का सताना एक ध्वज समान है। ईंटों के गिरने की धावाज अच्छे धादमी को भी बीमार कर दे, फिर बीमार पर क्या बीत यह तो केवल वही जान सकता है। मजदूर ईंटों को

बेदरी से बंजरने में मगमग है, उन्हें दूसरे की कोई विन्ना नहीं। उन्हें अपने नाम-से-नाम धीरे में बीमार है।

इन सबने यद्दर मिरदर्द बना हुआ है मूनिमिन्न इनेशन। गुनाव-पर्चा तेजी पर है। चारों धोर बोट के लिए बिम्बा हो रही है। माइक ने तो बमान ही कर रगा है। मेरे बमरे के तीनों दरवाजों, दोनों छिद्रियों धोर चारों रोगनशनों से जो मुनकर घाघाज घा गयी है उमगे मेरी नांद हवा हो गई है। इच्छा होनी है मैं इनके गिनाऊ प्रचार कर्म किन्तु मैं तो बीमार हूँ।

गुनावबामे धोर बान गा रहे हैं। उनको तो बंन नहीं किन्तु मैं स्वयं बेचैन हूँ। वे बेचैन को बंन से योगों दूर रहना चाहते हैं। गुनाव में मेरे एक चचेरे भाई, दूसरे मेरे हिलीपी के गिनात्री तथा तीसरे मेरे जिनगी दोस्त बाई नं० छह से खड़े हैं। जिसके स्वर में स्वर मिलाऊँ, रामक में नहीं माना। उन्होंने मेरी बीमारी धोर बढ़ा रनी है। वे कहते हैं, मैं जन्दी घाट छोड़ दूँ किन्तु मैं चाहता हूँ कि तीनों का बना रहने के लिए बीमार ही बना रहूँ तो अच्छा है। तीनों पर अपनी पुन सवार है धोर मैं बीमार हूँ।

यह लो, बाल-मन्दिर के एक युवक का गधारे। सरकारी नौकरी की तलाश में हैं। वे चाहते हैं कि यदि मैं...तक चल सकूँ तो उन्हें सर्व-बाँप की नौकरी मिल जायेगी। उन्हें कैसे समझाया जाय कि वहाँ तो...भादमी लगेगा किन्तु उन्हें कोई आशा की किरण दीख रही है। वे अपने लोभ के लिए मुझे लिवा ले जाने की जिद में हैं। मैं बीमार हूँ या अच्छा उन्हें कोई मतलब नहीं, उनको नौकरी मिलनी चाहिए।

युवक से छुट्टी मिली कि या गये युवक के साथ उनके सिफारिशी, धोर मेरे मित्र। फिर पुराना रिफाई चढ़ गया। मैं बेहद चिड़ रहा हूँ किन्तु उन्हें कोई चिन्ता नहीं। मैं अपनी बात बह रहा हूँ किन्तु उन पर धनहरण का भूत सवार है। किसी भी तरह धन माये, उनके लम्बे-चोड़े प्लान हैं। किसी को नौकरी दिलाने के आश्वासन से या किसी की बी. एड. में दाखिला दिलाने के लालच से। वे भैस समेत खोया करना चाहते हैं। मेरे सहारे भी उन्हें धन हड़पने की सूझी है। उन्हें कैसे समझाऊँ कि इन तिलों में तेल नहीं। उन्हें कैसे नीचे लाऊँ? दलील देने से मजबूर हूँ क्योंकि मैं बीमार हूँ।

उनसे पिण्ड छूटने भी नहीं पाया कि दस-मन्द्रह लम्बे खलीते लिए या धमके साहित्यिक पड़ोसी श्री भटनागर। दैवयोग की बात, उन्होंने भी आज ही डायरी-शैली में उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया है। हरेक नयी उपलब्धि को दुहराना चाहते हैं। उन्होंने अपने रसपाठ की पुनरावृत्ति के लिए मुझे ही उप-युक्त समझा। मैंने भी शिष्टाचार के नाते मुनने की उत्तुकता हो जाहिर की क्योंकि मना करके असाहित्यिक होने का भय था। खैर, वे गुनाते रहे, मैं मुनता

रहा। बीमार दिमाग ने साठ प्रतिशत से अधिक ग्रहण कर उत्तीर्ण होने के लिए प्रथम श्रेणी से अधिक श्रम पा लिये थे किन्तु उनकी डायरी की कड़ी कही-कही एकदम टूटती-सी श्रम को अवश्य सत्कृत कर रही थी किन्तु मुझे 'हाँ, हूँ' करने में कोई भावना नहीं थी। सामान्य से साहित्यिक मित्र की खोज में पड़ोसी ग्राम सिनसिनी के एक मध्याह्नक या घमके और उनका हनुमान-वालीसा प्रधूरा ही रह गया। मैंने सोचा, मुझे बीमार की राहत मिलेगी किन्तु उनका एक वाक्य मुझे और भावना दे गया। श्री भटनागर ने कहा—“मैं स्नान कर घाऊँ, भाप बातचीत कर लीजिये।” मैं जिससे जितना बचना चाहता था उतनी ही परेशानी और सद गई। श्री भटनागर साहब चले गये और उनकी भगत में बजाता रहा। वे कुछ उलाहने देते रहे। उन्हें कोई चिन्ता नहीं कि मैं बीमार हूँ।

सच मानो बणिक-बुद्धि चल रही है। प्रत्येक अपने सोम पर दूसरे का हिमालय जैसा साम होम करने को तैयार है। हरेक को अपना साम ही भर्जुन की चिड़िया का मस्तक बना है। मैं किससे कहूँ? गकनरलाने में सूती की आवाज कौन सुनता है! सद अपनी-अपनी पुन में हैं और मैं बीमार हूँ।

डायरी के पन्ने

□

योगेशचन्द्र जानी

दिनांक... छात्र उसने पूछा था कि साहब 'पवन' शब्द का सन्धि-विच्छेद क्या होगा ? उसके प्रश्न ने मेरे घबराहट ज्ञान-सागर का भंजन कर दिया, किन्तु किसी प्रमत्त की उपलब्धि नहीं हुई। उसे अल्पतः सम्बोधित कर, सादेस स्वस्थान ग्रहण करा दिया। उस छात्र की अल्पज्ञता पर मैं आज खूब हँसा—भला मूल शब्द का सन्धि-विच्छेद कर कोई महान शोधकार्य करना चाहता है। व्याकरणाचार्य बनने की सालसमा में मेरी ज्ञान-निधि को अपनी कसौटी पर कसना चाहता है। मैं अपनी निधि को सार्वं धेंद घोषित करना प्रथम कर्तव्य समझता हूँ।

दिनांक... मुझसे छात्र पुनः पगली कथा में पूछा गया, 'पवन' शब्द का सन्धि-विच्छेद क्या होगा ? प्रश्न उठते ही मैं घायब हुआ हो गया—प्रश्न पूछनेवाले की जमकर पिटाई हुई, साथ ही मेरे ज्ञान की सार्वक न समझनेवाले पहली कथा के छात्रों की भी।

दिनांक... छात्र मैंने प्रधानाध्यापक को उच्च प्राथमिक विद्यालयों की उच्च कक्षाओं के भाषा-अध्यापन का अनुभव सुनाने-सुनाते 'पवन' शब्द के सन्धि-विच्छेद का प्रश्न भी उनके सम्मुख रख दिया। अपनी प्रतिभा को सर्वोच्च मानते हुए मैंने बिनाविन कर दिया कि 'पवन' शब्द मूल शब्द है। मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा—सच्चा, बल बान बरेमे।

दिनांक... छात्र प्रधानाध्यापक जी ने मुझे बुलाया। उनके मन में भाषा का उत्तम उमड़ रहा था। 'पवन' शब्द की सन्धि का प्रश्न सप्रमाण सुनभाकर मुझे दिया। पो + वन = पवन (अपवाद मति)। धी के बाद अगमान स्वर होने पर उनका प्रश्न हो जाता है। मैं उनका यह वाक्य बहाकर—'मही ज्ञानार्जन के लिए विषय की अवगमन कहनाई में कृपता आवश्यक है'—गती-गती हो गया।

दिनांक... छात्र कथा में 'पवन' शब्द का सन्धि-विच्छेद पूछनेवाले छात्रों को लक्ष्मण सन्धि-विच्छेद बताया। उनके सम्मुख ज्ञान मना करने पर भी बुद्धि ने अपनी अल्पज्ञता स्वीकार की। साथ ही प्रधानाध्यापक जी का भी साधार माना। दिनांक के बरबादपद अनेक सुर्तों में मैं एक 'अल्पज्ञता स्वीकारता' पद कर सका। लोचन है अनेक अल्पज्ञ अनेक सुर्तों का जन्मदाता है।





मनसा मन्दिर की यात्रा

□

श्रीराम शर्मा

‘कल-कल निनादो झरने, हरित वस्त्रावृत पर्वतावलि धीरे नानाविधरूपा प्रकृति की वह सुरम्य छटा’—यात्रा भी जब उसका स्मरण होता है तो मानसिक रूप से मैं वर्षातुर्कर्म पूर्व के उसी वातावरण के मध्य-सा स्वयं को पाता हूँ। नीमकायाना के उत्तर-पश्चिम में अरावली की अत्युच्च पर्वतीय उपत्यकाओं में स्थित ‘मनसा-देवी’ की यात्रा ने हम सबके मन में एक ‘श्रुत’-सा वैदा कर दिया था। पन्द्रह बालचर, एक बयोवृद्ध शिक्षक धीरे में—निकल पड़े मनसा माता की तीर्थयात्रा पर।

उन दिनों मैं गुहाला (सीकर) में पढ़ता था। शिक्षक-जीवन के प्रारंभ में यात्रादि के लिए विशेष उत्सुकता रहा ही करती थी। गुहाला से मनसा देवी की यात्रा के लिए दो मार्ग हैं—एक सड़कवाला, दूसरा सीधा—केवल चार मील की दूरी से ही सीधा पर्वतों में से होकर। निर्णय हुआ कि पर्वतोंवाले रास्ते से वहाँ जायेंगे। हमारे बीच इस मार्ग की एक ही बाधा थी—श्री बहोरीलाल—हमारी शाला के बयोवृद्ध शिक्षक। उनकी अवस्था का तकाजा था कि हम सड़कवाला मार्ग अपनाते, पर ‘तन का प्रौढ़ धीरे मन का युवक’ वाली कहावत को चरितार्थ कर ने भी हम युवकों की टोली के ही साथ हो लिये।

शनिवार, दो बजे, मध्याह्न बाद हमारी यात्रा शुरू हुई। हमें पता था कि भोजन बनाने का सारा सामान मनसा मन्दिर में मिलेगा, अतः बालचर टोली ने अपने-अपने कन्धों पर भोजन-सामग्री ले ली। रास्ते में केवल एक गाँव पड़नेवाला था—‘मणकसास’। हमारा पहला पड़ाव इसी ग्राम का रहा। एक घंटे की इस यात्रा की बालकों ने दौड़ते-कूदते, गाते-नाचते केवल चालीस मिनट में तय कर लिया। ‘मणकसास’ से ठीक आगे अरावली की वह दुर्गिबार भौटी थी, जिसके ठीक पास से हमें मनसा मन्दिर पहुँचना था। श्री बहोरीलाल ने हम सबको हिदायतें दीं, तीन मील की चढ़ाई के लिए तैयार होने को कहा, गिनती

की, कुछ विभ्राम किया, सबने पानी पिया और अब हमारी यात्रा शुरू हुई।

एक मील की चढ़ाई के बाद कुछ मालक धीरे चलने लगे। कुछ छात्रों का जोश तो अभी भी वैसा ही बना हुआ था, मानो अभी दो कदम में ही इस चोटी को लांघ लेंगे। पहाड़ी पगडंडी के दोनों ओर के पेड़ों को निहारते, धिरमियाँ (गुंजिया) तोड़ते और शंगरिया (एक पहाड़ी रसाल) खाते सभी लोग चले जा रहे थे। छात्र बीच-बीच में 'भारतमाता की जय', 'वज्ररंग बली की जय' और 'हर-हर महादेव' के गारों से पर्वत-प्रदेश को गुंजाते जा रहे थे। वे एक आवाज लगाते, दूसरी आवाज पर्वत से प्रतिध्वनि के रूप में आती और छात्र आनन्दमग्न हो हँसी का ठहाका लगाते।

इस प्रकार हँसते-हँमाते, उछलते-कूदते हमने दो मील से अधिक की चढ़ाई पूरी कर ली। करीब-करीब सभी लोगों को हलकी-सी थकान महसूस होने लगी थी। श्री बहोरीलाल, जो करीब एक फलांग पीछे-पीछे चल रहे थे, थककर धूर-धूर हो गये थे। बाव्य होकर मुझे उनके साथ-साथ चलना पड़ रहा था। कहना चाहिए अठारह वष की उम्र में ही वयोवृद्धता का स्वाग करना पड़ रहा था। चल रहा था पीछे-पीछे पर मेरा मन छात्रों की उस टोली की हर उछाल से पहले उछल पड़ता था। कुछ देर के लिए सब रुके, हलका-सा विभ्राम किया, अपनी-अपनी केतलियों से पानी पीकर आगे की यात्रा शुरू की।

यहाँ से थोड़ा आगे ही एक समस्या खड़ी हो गई। इस पर्वत-प्रदेश में निरंज, एकछत्र अधिकारी के रूप में विचरण करने वाले संगूरराज और उनके दल की हमारा यहाँ आना बड़ा लटका। छात्रों की हर आवाज के बाद हूँक-हूँक की गगनभेदी हुंकार लगाते ये बन्दर पर्वतों की टहनियाँ तोड़ने लगे। इधर छात्रों का भी कौतूहल बढ़ रहा था। दोनों ओर संगूरों की टोलियाँ, बीच में हमारा दल। छात्रों ने जाठियाँ से रखी थी। बन्दर सीतें निपोरते, किट-किट और हूँ-हूँ करते हमारे साथ चले जा रहे थे। एक-दो छात्रों ने बन्दरों को छोड़ने की हरकत की तो तुरन्त हमने रोका क्योंकि इससे इस शीत-युद्ध का गुड में बदल जाने का खतरा था।

जब संगूरों की संख्या बढ़ने लगी तो हमने एक बार टहरने का निर्णय किया। न हम वापस लौट सकते थे और न निष्कण्टक रूप से आगे जा सकते थे, क्योंकि बिना राम के इस बानर दल से भिड़ंत अवश्यम्भावी लगती थी। साँचा, साथ-साथ हमारे टहरने से मह टल जाय। यदि नहीं तो फिर हमारे पास दानव दल तो था नहीं, अतः निर्णय लिया कि कुछ टहरकर निर्णय लिया जाय। हमारा टहरना था कि आगे पचास कदम आकर संगूरराज की एक हुंकार के साथ सारा बानर दल भी उस पहाड़ी पगडंडी के बीचों-बीच आकर बैठ गया।

भव तो घोर भी मुसीबत खड़ी हुई गई। ऊपर से भगवान मास्ककर बड़ी तेज गति से अस्ताचल की ओर जा रहे थे, इधर मुझ अवश्यम्भावी लगता था। बौद्ध विद्यावान जंगल, संध्या का सान्निध्य और ऊपर से नर-वानर-संग्राम का संकट। सबने मिलकर मन-ही-मन मनसा माता का स्मरण किया। घमरी बुल चार भीन और चलना था—एक भीन चढ़ाई और तीन भीन भागे। फिर भी कुछ बैठकर सोचने लगे, इस विकट स्थिति को कैसे टाला जाय ?

हमारे इस नर-दल के बीच एक बालक मोहन यादव (जो भव यानेश्वर है) बहुत शीतल था। उसने हमसे नज़र बचाकर एक भोज बन्दरो की ओर फँकी। सारे बन्दर इसे मुझ का संवेत मानकर उस पत्थरनुमा वस्तु पर टूट पड़े। वह जिसके हाथ लगी उसने देखा कि यह तो पत्थर नहीं, कोई और चीज़ है। घबड़ी मुगध देनेवाली, सायद खाने की हो। एक ने उसे मुँह से तोड़ा, तो बस लगा खाने। और फिर तो नजारा ही कुछ और था। छोटा-भरटी और माग-दोड़ ! दलपति की सायद यह अनुशासनहीनता नहीं भायो। वे भी दौड़-भर वहीं घायले, जहाँ यह उछल-कूद चल रही थी। उनके हुंकार भरते ही सब बन्दर परे हट गये। उन्होंने उस चीज़ के टुकड़ों की उड़ाया, देखा, सूँघा और अधिक देर तक लोभ संवरण नहीं कर सके। एक-एक टुकड़ा उठाकर खाने लगे। पास बैठी एक छोटी बदरिया ने भी एक टुकड़ा उठाने की हिम्मत की तो वानर-राज ने उठकर उसे एक पण्ड जड़ दिया। बदरिया बेचारी चर्राँकर दूर जा पड़ी। वे बिड़बिड़ाने रहे—पहले दाँतों की, फिर उस खाद्य के टुकड़ों की।

हम सब बड़ी सतर्कता से सारी स्थिति को देख रहे थे। मोहन से पूछा तो उसने बताया कि उसने वानर दल की ओर अपनी माँ द्वारा बनाई गई और अपनी रीसा के सचवान की से लगी मक्खी की बाटी फेंकी थी। मक्खी की बाटी मक्खी पर एक तरकीब दे गयी। मोहन ने एक पत्थर उठाया और पहाड़ की ढलान की ओर फेंक दिया। वानरराज ने देखा—मक्खी की एक बाटी और, वे सारक पड़े पहाड़ की ढलान की ओर। फिर बना था, इधर से पत्थर फेंके जाने लगे—ओर से, ओर ओर से, एक ने बाद एक ओर फिर गई। वानर दल ने देखा, मक्खी की बाटियाँ खनी जा रही हैं। दोड़ मच गई उनमें, एक से दूसरा भागे जाने लगा वह मुकामित पदार्थ खाने—दूर बहुत दूर नीचे तक। जहाँ से उनका गुरगुर सौटना श्रुति था। मनसा यात्रा की शृंगार श्रुति या मोहन की अनुसर्ग, यह सत्रा दूर दूरा और हमारा दल भागे खाने लगा।

पहाड़ की चोटी पर चढ़कर थोड़ी एक निहत्ता सहाय्य कि एक दूसरी साधन था मक्खी। व. बहोरीमान जी ने बताया कि उन्हें कुछ भी मुनाजी नहीं दे रहा है। एवम अव्यक्त-शक्ति साधक, सायद यह सत्रा का परिणाम हो। कुछ दूर चलकर उन्होंने कहा कि वे अब एक ब्रह्म की नहीं बन सत्रे। बड़ी

विलक्षण स्थिति थी, हमारी सुन नहीं रहे थे और घाने बुजुर्गाना अन्दाज में हमें कोसते चले जा रहे थे—“बहुत बड़ा कि सीधे मन चलो, पर माने नहीं। ये तो बच्चे थे पर तुम भी नादानी कर बैठे। सरकार को इतनी छोटी उम्र में इन्हें शिक्षक नहीं बनाना चाहिए था।” सँर, बड़ी मुश्किल से इशारों-इशारों में उनसे क्षमा-याचना की और धीरे-धीरे घाने बढ़ने लगे। वैसे भव रास्ता सुगम था, भतः चलने में कोई कठिनाई नहीं हो रही थी।

संध्या का समय, माघपद मास के वे अन्तिम दिन, हरितगुणावृत पर्वत-प्रदेश की क्षीतल, मंद और सुगन्धित वायु—यह भानन्द वर्णन का नहीं, अनुभूति का विषय था। चन्द्रोदय से पूर्व ही हम मन्दिर के समीप जा पहुँचे। अपनी मंजिल धायी देख छात्रों ने ‘हर हर महादेव’ और ‘जै जै काली’ के तिहनादों ने वायुमंडल को गुंजाना शुरू कर दिया।

मनसादेवी के इस विशाल मन्दिर के सामने ही एक झरना है। जल प्रत्यन्त क्षीतल और मीठा। कुछ देर टहरकर सबने उसका पानी पिया और तृप्ति की एक साँस ली। भरे, बहोरीसात जी को सुनाई देने लगा। पानी क्या, यह तो चमत्कार है। “जय हो मनसा माँ तेरी, जगजननी, जगदंबे, तेरी माया अपार है।” पंडित जी कह उठे।

अपना-अपना भोजन कर सबने रात्रि में विधाम किया। दूसरे दिन घूरमा, बाल और बाँटी बनाकर मनसा माँ को भोग लगाया। मनसा माँ की यहाँ एक मुखा में प्राकृतिक प्रतिमा है—शिवलिंगनुभा, अमरनाथ की हिममूर्ति से बिलकुल मिलती हुई। जानकारों का कथन है इसे किसी ने बनाया नहीं, यह स्वयं पहाड़ चौरकर निकली थी। दर्शन, भोग, भजन और कीर्तन के बाद सबने भोजन किया। कुछ विधाम करने के बाद उस पर्वत-प्रदेश की पुनः परिणामा की, भरने का क्षीतल मीठा जल पीकर मनसा माँ के दर्शनों के बाद लौटने की तैयारी हुई।

लौटने के लिए सड़कवाला मार्ग तय किया गया। सोलह मील के इस मार्ग में भी घाठ मील का पर्वतीय हत्ताका और फिर छोटे-छोटे ग्राम और ढाणियाँ पार करते हुए रविवार की रात को घाठ बजे हम गुहाला लौटे।

जीवन के चार दिन शीप थे

□

हुतासचन्द जोशी

सन् १९६४ के धनतूवर माह मे सीकर के पास एक गाँव के बाहर हमारा एन० सी० सी० का कैम्प लगा था । कॉलेज जीवन का मेरा यह पहला कैम्प था ।

छोटी उम्र थी । उत्सुकता अधिक थी । प्रत्येक नये धनुष्य के लिए सीढ़ इच्छा रहती थी ।

कैम्प का जीवन व्यवस्थित और आनन्ददायक था । सारा कार्य देखी और स्फूर्ति से होता था । सभी को हुक्म था, 'प्रत्येक काम दोहरा करो ।'

सभी कॉलेजों को बारी-बारी से हर्ष-गर्वत तक पैदल यात्रा करनी थी । सुबह माफा करके रवाना होते थे और दूसरे दिन शाम को वापस आ जाते थे । यात्रा हमारे कॉलेज की बारी थी ।

एक काफिला घूम का मुन्वार पीछे छोड़ता घामें जड़ रहा था । मैनों में बसलें सड़ी थीं । बार-बार मोल का चारपा बानों-बानों में बट गया ।

मग पहाड़ की चढ़ाई शुरू हुई । पहाड़ दूर से जरूर देखे थे । नजदीक से देखने और चढ़ने का यह पहला अवसर था ।

दूर से पहाड़ की चोटी कोई सात ऊँची नहीं लगती थी । ऐसा लगा था कि सभी कुछ ही रातों में उगनी घाँसियों चोटी पर होंगे । बूझों की हरिषाण से घिरी प्रत्येक चोटी घाँसियों चोटी लगती थी । ज्योंही उम चोटी को पार करते उगनी ऊँची चोटी फिर सामने लगी मिलनी । चोटी-दर-चोटी पार करते गये सभी इस पहाड़ की घाँसियों में जलनी जलकर घूसा करते थे जो प्रायः बन्दूक निशाना बन चुके थे ।

ऊपर तक पहुँचने-पहुँचने सब बकरा-भर हाँ भूँ में । पुराने जैन मन्दिर की बत्ता की देखने का बौद्ध इतना प्रबल रहा कि जब तक उसे पूरे देख नहीं लिया गया, किसी को भी बरान का भान नहीं हुआ ।

बाँवों की घनी छाँट-नये प्रभः मोग मो भूँ में । ऐसा मुन्दर हल देखने का फिर जब अवसर आने, बोन आने ?

गब को गोया छोड़ मैं उड़ गड़ा हुआ । एक चट्टान मे दूसरी चट्टान को पार करते काफी दूर निकल गया ।

छोटे-छोटे पोगरों मे पानी को जानवरों ने भँदना कर रखा था । बकरियों का भुड़ भासगाग चर रहा था । कोई-कोई बकरी ऐसे स्थान पर लड़ी चर रही थी कि थोड़ी चूरी घोर गयी । कुछ ऐसी चट्टानों पर लड़ी थी कि दिमाग में उलझन-भी उमर घाती—'यहाँ बकरी कैसे पड़ी होगी ?'

एक ऊँची चट्टान के किनारे सड़ा होकर मैं चारों ओर के दृश्य देखने लगा—दूर-दूर तक के गाँव रई के फाहे-से दिखाई दे रहे थे । उन पर घुँगे वा घुँदला साया सँरता-सा नजर आ रहा था । गाँव विनकुल हिवर-से जान पड़े जैसे ऊपर से किसी ने उन्हें आहिस्ता मे उतारकर रख दिये हों ।

दूर नीचे—तानाब छोटे पोगरों जितने ओर ऊँट, बैल आदि जानवर भेड से भी छोटे दिख रहे थे ।

चारों ओर हरियारी की आदर बिछी थी । इन स्वर्गिक क्षणमें—निगान्त एकान्त में मैंने मुँह पर हाथ रखकर जोर से आवाज दी, 'मैं यहाँ हूँ...'

आवाज घाटियों से टकराकर भूँज उठी, 'मैं यहाँ हूँ ! मैं यहाँ हूँ ! कोतुक से मैंने कई आवाजें दीं ।

नीचे झुककर कई छोटे-छोटे कंकड़ उठा लिए और जोर से ऊपर उछाल-कर फेंकने लगा ।

ऊपर से नीचे की घोर पत्थर एक भजीब सनसनाहट की आवाज के साथ नीचे ओर नीचे चला जाता । भजीब मजा-सा आ रहा था । पत्थर गिरने की आवाज नहीं आ रही थी । दूसरा पत्थर फेंका, कोई आवाज नहीं । तीसरा... चौथा... फेंका, कोई आवाज नहीं ।

न जाने कहाँ जाकर गिरते थे ।

पत्थर-दर-पत्थर फेंकते देख बकरी चरानेवाले लड़के ने मुझे टोका, 'बाबू जी ! यहाँ से पत्थर न फेंकें । नीचे सड़े किसी जानवर या आदमी के ऊपर पत्थर चला गया तो उसे सतम ही समझिए ।'

बात मेरी समझ में उस समय आयी जब मेरी धीमी-सी ठोकर से एक पत्थर छुड़का और बन्दूक की गोली से भी तेज गड़...गड़...गड़ करता तेज गति से न जाने कहाँ चला गया । मैं साँस रोककर देखता रह गया । प्रत्येक चट्टान की टक्कर उसकी गति को तीव्रता प्रधान कर रही थी ।

उस चट्टान के दूसरी तरफ कुछ नीचे उत्तरा । चट्टानों में चौड़ी-चौड़ी दरारें पड़ी थी । एक दरार के किनारे पर मैं बैठ गया । आसपास की चट्टानों को घास को पकड़कर मैंने दरार के नीचे झँस । आश्चर्य से सहम गया । मैं घुटनों के बल बैठकर जितना झुक सकता था, झुका किन्तु दरार का तल नहीं देख

सका। किसी गहरे कुएं से भी न जाने कितनी गहरी दरार थी।

दरार ज्यों-ज्यों गहरी होती चली गयी थी, उसकी सतह चिकनी और सपाट होती चली गयी थी—घन्तहीन।

मैं दरार का तल देखना चाहता था, किन्तु यह असम्भव था। दरार में उतरा नहीं जा सकता था, न उसमें सहारे के लिए किसी प्रकार की धातु ही खड़ी थी।

एक लम्बी सोत खींचकर मैं उठ खड़ा हुआ। तीन-चार कदम चलकर एक चट्टान पर बैठ गया और उन दरारों के बारे में सोचने लगा जिनका तल न जाने कहाँ था।

समय काफी हो चला था, फिर भी मन नहीं मरा था। ऊपर की बहुत बड़ी चट्टान केवल धरातल से सटी हुई खड़ी थी। चट्टान बाहों के घेरे से कुछ ही बड़ी थी। शायद जरा से धक्के की जरूरत थी।

भगर यह लुढ़क जाये तो कितना मड़ा धाये। मैं ऊपर-नीचे उसके चारों ओर पैर जमाकर लुढ़काने का प्रयास करने लगा। काफी प्रयास से पसीना आ गया किन्तु चट्टान अपने स्थान से नहीं हिली।

दरकर बैठ गया। आज इस चट्टान को लुढ़काकर ही जाऊँगा, सोचते हुए मैंने हुंकारा प्रयास किया। कुछ घास और परधर चटककर मेरे हाथ में इस तरह धाये कि मैं पीछे की ओर झिग गया। मग से मेरा रोम-रोम काँप उठा। शरीर धरधरा उठा। चट्टान घकेलने के प्रयास में मैं झूल गया था कि मैं अभी तक दरार के कपार पर ही खड़ा मौन की निमग्नता में रहा हूँ।

केवल एक-दो इंच का ही फासला था। थोड़ा-सा, केवल थोड़ा-सा—घोर झिग गया होता तो...

मैं दरार के तल पर पहुँच जाता और विद्यापियों की संख्या में एक की कमी हो जाती। किसी को पता भी नहीं चलता कि मैं कहाँ चला गया हूँ।

मैंने पसीना पोछा। चट्टान उखाड़ने का विचार छोड़कर ऊपर चढ़ने लगा। चट्टान नहीं लुढ़का सहर इसकी निराशा तब दूर हुई जब यह समझ में आया कि भगर चट्टान लुढ़क जाती तो मेरा क्या होता।

चट्टान ऊपर थी और मैं नीचे। चट्टान मुझे धरने में लपेटकर मेरे टुकड़े टुकड़े करते हुए न जाने किस तल पर जाकर स्वती।

मेरी उम्र ही लम्बी थी, नहीं तो मैंने अपनी ओर से कोई बस नहीं छोड़ी थी। जब तक मैं बापन आया, गिनती शुरू हो चुकी थी। गिनती पूरी थी।

मैं मन-ही-मन हँस पड़ा।

उ बने गत गब भीने गाँव में पहुँच गये । रात उसी गाँव में बितायी थी ।

सभी बापों के बाद गढ़ मिथुने-मुचबुनाले-धुमधुमाने भाने-भाने बम्बनों को चारा घोर सनेटहर मो गये । रागमर मार्ये-मार्ये करती भाँपी का जोर कम हो चुका था । घाँग खुली तो गुबट्ट हों चुकी थी ।

धूल भाइकर सब धपने बामों में लग गये ।

दूसरे दिन भी पहाड़ की चढ़ाई थी । करीब यहाँ से डेढ़ मील दूर पहाड़ी पर पुराना गढ़ था । गढ़ के दरवाजे पर खमगादड़ सटक रहे थे । उनकी मंदायी से अजीब तीव्र गन्ध उठ रही थी । सभी नाक बन्द करके तेजी से दौड़ पड़ते थे । गढ़ का भीतरी भाग खुला घोर साफ था ।

इतना बड़ा गढ़ मैंने पहले कभी नहीं देखा था । सब कुछ मेरे लिए नया था । प्रत्येक वस्तु को छू-छूकर देखता । अनेक कमरे और अनेक द्वार थे । हम न जाने किस द्वार से प्रवेश करते थे कि घूम-फिरकर वापस उसी स्थान पर आकर ठहर जाते थे ।

अजीब भूलभुलैयाँ थी । फिर भी गढ़ का एक-एक कोना देख लिया था । वहीं पर पानी के बड़े-बड़े होठ बने थे—बहुत ही गहरे और लम्बे-नौड़े । इतनी ऊँचाई पर इन चट्टानों को न जाने कैसे काटा और छोड़ा होगा—उस खमाने के लोग ही जानें ।

न जाने कैसे थे वे लोग । मैं ही नहीं, सभी भावुक हो उठे थे । सूवेदारें मुँह पर हाथ रखे उस स्थान पर बैठ गये जहाँ कभी राजा बैठ करता था । एक व्यक्ति बता रहा था, 'यहाँ राजा बैठता था...यहाँ दरबार लगता था...' एक काल्पनिक नक्शा उस समय का उस व्यक्ति ने खींचकर रख दिया था ।

मन भावुक हो उठा—काश, वे लोग कुछ क्षणों के लिए जीवित हो उठते ! कहीं थोड़ी-सी खनखनाहट सुनाई दे जाती !

केवल कल्पना थी । घुटकर रह गयी । क्यों पुराना किला सुनसान पड़ा था । कभी यहाँ पापलें खनकती थीं...तलवारें खड़कती थीं...घोड़ों की टापें गूँजती थी ।

आज यहाँ अभी कुछ शोर है, हमारे आते ही वापस सुनापन उभर आयेगा । कुछ दणों के लिए किला जीवित हो उठा था ।

छत की दीवार पर सड़ा होकर—भूककर मैं यह देखता चाहता था कि पहाड़ की पहाड़ से ऊँचाई कितनी है और फिर वहाँ से पहाड़ की नीचाई कितनी है । दोनों तरफ की दीवारों का सहारा लेकर मैं खड़ा भी नहीं पाया था कि एक

साथी ने हाथ पकड़कर नीचे खींच लिया, 'बनकर खाकर गिर गये तो नीचे से लाश सानेवाले नहीं मिलेंगे। थरवाले इन्तजार करते ही रह जायेंगे कि बेटा अब आये—अब आये।'।

मन भारकर रह गया। नीचे पैरों के पंजों के बल खड़ा होकर जो कुछ दिशा उतने पर ही सन्तोष कर लिया।

अब काफी समय बाद सयता है कि मैं उस दीवार से गिर सकता था।

चमेली की बेल घाँस में फँसी थी। मन फूलों की घोर झुक गया।

पहले कुछ भिन्नता किन्तु थोड़ी देर बाद बेल को पैरों तले रौंदता हुआ काफी धन्य तक घुस गया और पच्छे-पच्छे दस-गन्धक फूल छोड़ लिए।

फूलों को सूँघना ही चाहता था कि हवलदार न जाने कहाँ से आ टपका, 'क्यों आई? फूलों को सुगंध कैसे है?'

'घण्टी है!' मैंने छोटा-सा उत्तर दिया।

'घण्टी है सभी लगाये है। किन्तु इतना नहीं सोचा कि इतनी ऊँचाई पर इस बेल लगानेवाले को कितनी मेहनत करनी पड़ती होगी।' भागे उसने केवल इतना ही कहा, 'मास्टर कलज में पड़ते हो—थोड़ी समझ रखी।'।

हवलदार मुझ पर स्नेह रखता था। फिर भी वह सब-कुछ कह गया।

मैंने फूल वापस बेल पर फँक दिए।

दोपहर के बाद करीब तीन बजे वहाँ से कूब करने लगे। गद के पिछवाड़े से उतरने का आदेश हुआ। रास्ता तंग, पथरीला और टेढ़ा-मेढ़ा था।

सभी तेज गति से उतर रहे थे—एक-दूसरे से धक्का-भुक्की करते।

हवलदार ने तेज आवाज में कहा, 'माहिस्ता और सावधानी से चलो। कंकरी महीन और फिसलने वाली है।'।

परन्तु वहाँ कोन-मुनता था।

एक मोड़ बहुत ही तिरछा और ढालू था, साथ ही फिसलन। कुछ हिस्मत वाले उसे भी उसी रफ्तार से पार कर गये।

फिर कुछ क्षणों में...ओह, उने में कमी नहीं मूल सकूँगा। मैं उससे कुछ ही बरस पीछे था।

एक लड़के का पैर फिसल चुका था और वह लुढ़कता हुआ कई फीट नीचे जा रहा था। हवलदार अपने स्थान से उसकी सीमा में उछलकर चिल्लाया, 'मूर्खों! सावधान। एक लड़का गिर चुका है।'।

लड़का पेट के बल एक पत्थर में घटककर दोहरा हो गया। अगर वहीं और जगह से टकरा जाता तो...हवलदार उसे सम्भालने को भागे बढ़ा ही था कि किसी भी घनत्व में सभी ठोकर से एक पत्थर ऊपर से गड़... गड़... गड़ करता लुढ़क पड़ा। पत्थर गति पाकर सनसना उठा। हवलदार चीरकर

दो-तीन कदम पीछे हट गया। पत्थर लड़कें के तिर की सीप में था। कुछ एगों में...आह! सब की आँखें भिन्न गयीं।

बैबन बानिस्त मर पड़ने पत्थर, दूसरे लड़े पत्थर से टकराया और तिर में एक हाथ ऊपर की ओर होने हुए नीचे की ओर झुकता हुआ बना गया।

कुछ ही क्षणों में मौन ने दो बार भाड़ते उस लड़के पर मारे थे। जोबन शेष का और मौन कुछ ही पलाने में गुजर गयी थी।

कैसा मनकर स्वप्न का जगहा !

छत्र हवनसार को हान देने की जरूरत नहीं पड़ी। सभी आहिस्ता-आहिस्ता चारने लगे।

वे दिन अचिरक समय तक मोन-विचार करने के नहीं थे। कठोर वजान गाऊ बरसों बाद ही बड़ी हलचल शुरू होने लग गयी थी। उस गडगा का पपात छोटे-छोटे कम होता जाता जा रहा था। तिर भी एक तीव्र मधके मर में उभर पड़ी थी।

कैसा ही दिन की याद भी। कात भी याद है। कई बार मोन भी यकना कात पाते जाते।

लेन सवगत को फिर भी का जगहा, दिनु के दिन ! — अभी नहीं।



कश्मीर की यात्रा और हम

सुलतानसिंह गोदारा

हिंदी कवि ने दिल्ली की गर्मी के बारे में कहा है :

जून महीना घड़े पसीना,
मुदिरस जीता,
भाड़ बनी है दिल्ली।

दिल्ली ही क्यों, मई-जून में हमारे श्री संगमनगर की गर्मी भी बर्माभीष्ट के बारे में अधिकतम ऊँचाई पर पहुँचा देती है। ऐसे में धरती के स्वर्ण कश्मीर की सैर और उसमें धरती का साथ।

२६ मई की सुबह के छ. बजे। एक हरे रंग की गाड़ी श्री संगमनगर से पंजाब जानेवाली सड़क पर निकली। रोडियों पर रामचुन धा रही थी, परन्तु बार में गवार छ' यात्री अपनी ही घुल में थे, जिनकी आँखों में कश्मीर के झरने, पर्वत व बर्फ के लहने लक्ष्य धामी में प्रतिबिम्बित होने लगे। सूर्य देवता ने प्रलम्ब चरणों में बिदाई दी। दोपहर होने-होते अमृतमय सा गया। स्वर्ण-मंदिर व जनिदाबाग बाग, धर्म व साहस के अमर प्रतीक, थोड़ा से किम भारतीय का गिर नहीं भूँष जाता? अनुराग बापर की मोतियों के निधान अब तक पहर की छाती पर अडे हैं, जो धबधब के अग्राधारों की कहानी स्वयं कहने हैं।

साँझ होने तक पंजाब पार कर लिया। सँतान पीछे रह गए, पहाड़ अगवाती करते-ते लगे तथा मंदिर घुमावदार बनने लगी। जल्दी से अपने के साथ ही हमने जम्मू पहर में प्रवेश किया। जम्मू, कश्मीर के स्वर्ण का प्रवेश-द्वार है। जम्मू में शोनगर की हवाई दूरी तो दोहो-नी है परन्तु सड़क पूरे एक दिन में पहुँचती है। जम्मूर, कुड, बनिहास आदि राहों के मुख्य टहण्ड है। सड़क सामरिक महत्व की है। इसे नेहरू-मुराद ने खाली छोटा कर दिया है जो लक्ष्मण दो कील साड़ी है। इसे पार करने पर मंदिर कुछ झुंझने लगी। बलेश्वर जाने अचानक प्रकृति का पर्दा उठा और कश्मीर की प्यारी सीमा के सामने दी।

मी है। फूलों के प्रेमियों तथा विज्ञानिक के लिए यह आदर्श जगह है।

श्रीनगर के बाहर हमारा सबसे बड़ा आकर्षण गुलमर्ग था, जो वहाँ से पच्चीस मील दूर है। गुलमर्ग जानेवाली महक सुन्दर तो थी ही, परिचित भी लगी क्योंकि यह बहुत-सी आधुनिक फिल्मों के दृश्य में आती है। पहले टनमर्ग आता है जहाँ से गुलमर्ग की चढ़ाई तीन मील है। लोग घोड़ों पर भी जा रहे थे, परन्तु घोड़ों पर जाने से खजानी को साज लय जाती। गुलमर्ग पहुँचते ही प्राकृतिक सौन्दर्य ने सारी यकान भुना दी। नीचे घास के मैदान, ऊपर दूर बर्फ के पहाड़, पास से गुजरते रंगीने तबीयत के यात्री। सभी को प्रकृति ने जैसे धरने रंग में रँग लिया। क्या जीवन इसी तरह नहीं सुझाया जा सकता? स्वर्ग में इससे बड़कर क्या होगा? सदियों के सेलों के लिए गुलमर्ग एकमात्र जगह है। यहाँ होटल व डाक बँसते भी हैं। स्निनमर्ग पहुँचने में एक घण्टा और लगा। अब हम समुद्रतल से १०,००० फीट से अधिक ऊँचाई पर थे तथा यहाँ की बर्फ हमारे पैर चूम रही थी। चाय का सामान हम साथ ले गए थे। भन, घबराव मिटाकर, ऊँचाई पर जाकर बर्फ पर कितने, लुढ़कने व कँचरे को लुकी छूट दे दी। सूर्य झुकने लगा और हम वापस घाना ही था।

श्रीनमर्ग एक सुन्दर बादी है जो श्रीनगर से २१ मील उत्तर-पूर्व में है तथा ६,००० फीट ऊँची है। बहते हैं। यहाँ बड़ी पर एक कुछो है जिसका पानी किसी भी वस्तु को साँता बना सकता है। रास्ता तिथ नदी के साथ जाता है। श्रीनमर्ग बहुत अच्छा बँसिय फाउण्ड है। इसे एक घन्टे, पास के बरुनि मैदान के नाम से भी जाना जाता है। इस बादी में ६०० मीटर की सेवा-भावना की गुणवत्ता है जिसने यहाँ के निवासियों के लिए रोपों से लदाई की तथा उनका दिल जीत लिया।

हमारे अब तक के पर्यटन का केन्द्र श्रीनगर ही था परन्तु अब मंजिन पहलवाम भी अब श्रीनगर को घबराता बहता ही पड़ा। रास्ते में नवश्रीक ही पोटेशन के मन्दिर व रागहर तथा घबलीपुर में लिबो के मन्दिर हैं जो नवी बादी की देन हैं। मार्ग का मन्दिर एनिनादिन ने बनवाया था। घबलवाम कश्मीर के प्रसिद्ध नामों में से है। नाथ का घर बनता था चरमा है। मयन वा मयन में आदि बिजे जाने हैं। यहाँ घबलवाम के पण्डे रहते हैं। घबलवाम बाग महबूदी जहाँबाग की देन है। कश्मीर ही बोटलवाम है यहाँ का मयन के पानी का भरता रोप-निधारक है।

अब २ जून का सूर्य पहाड़ों की छोटी जेकर टिप्पे ही बागा था कि हमारी टोपी पहलवाम पहुँची। सूर्य की प्रकृति ने सारे कश्मीर पर घबरा केमब सुझाया है, परन्तु घबलवाम के मार्ग में बहनेवाले पहलवाम की रोजा तो घबरीय है। यहाँ टिप्पे के लिए होटल व सन्तु की व्यवस्था है। ७,००० फीट

वारह दिन का भ्रमण और पाँच पड़ाव

□
सुलतानसिंह गोदारा

सुबह होती है, शाम होती है जिन्दगी यूँ ही समाप्त होती है।

बेहतर है जिन्दगी समाप्त होने से पहले ही तमन्नाएँ पूरी कर ली जाएँ। कई बार तमन्नाएँ, कुछ पुरानी साधें घनाघात ही पूरी हो जाती हैं। ऐसा ही कुछ हमारी उस भ्रमण-यात्रा में हुआ जो अक्टूबर में दमहरे की छट्टियों में श्री महावीरसिंह जी के नेतृत्व में हुई।

यात्रा का प्रथम पड़ाव बल्थमा-नगरी चण्डीगढ़ में था, जहाँ हम १२ अक्टूबर की सुबह पहुँचे। चण्डीगढ़ भारत के बड़े शहरों से कई अर्थों में भिन्न लगा। यहाँ वह भीड़ नहीं कि दम घुटने लगे। वह माहौल नहीं कि यात्री अपने-आपको अजनबी महसूस करें। यद्यपि इन दिनों चण्डीगढ़ राजनीतिक हलचलों का केन्द्र था-परन्तु चण्डीगढ़ की चौड़ी सड़कें, व्यवस्थित बाजार, शान्त कृषिभूमि और सुन्दर परिवहन-व्यवस्था सभी अपने नागरिकों के प्रति बकादार थी।

चण्डीगढ़ भारत का गृहमन्त्र योजनाबद्ध नगर है। फ्रांसिसी शिल्पकार कार्बुजिए नगर को जीवित प्राणी मानते थे। नगर के सिर पर सचिवालय, विधान सभा व उच्च न्यायालय स्थित हैं। मध्य में प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र है। सबसे नीचे औद्योगिक केन्द्र है। नगर को तीस सँकटरो में बाँटा गया है जो प्रत्येक भाषा और तीन भाषा समूह में बाँटा है। प्रत्येक सँकटर पूर्णतः आत्मनिर्भर है। शहर का प्रमुख आकर्षण सुखना भीत है। इसमें सार्व के समय नौका-बिहार किया जा सकता है। सँकटरो में उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय, पॉलीटेक्नीक, आर्ट्स कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज, चिकित्सा संस्थान आदि हैं। सँकटर न० अठारह में टैगोर थियेटर के निर्माण पर जो साख खपा व्यय हुआ है।

यह कहे हो सक्ता था कि चण्डीगढ़ आएँ और पिबोर बाग और हिन्दुस्तान मशीनरी टूल्स का कारखाना न देखें। जहाँ पिबोर मुगलकालीन ऐदवर्ग की आँसी प्रस्तुत करता है वहीं हिन्दुस्तान मशीन टूल्स का कारखाना अपनी

वारह दिन का भ्रमण और पाँच पड़ाव

□
सुलतानसिंह गोदारा

सुबह होती है, शाम होती है जिन्दगी यूँ ही समाप्त होती है।
बेहतर है जिन्दगी समाप्त होने से पहले ही समझाएँ पूरी कर ली जाएँ।
कई बार समझाएँ, कुछ पुरानी सार्थक भनायास ही पूरी हो जाती हैं। ऐसा ही
कुछ हमारी उस भ्रमण-यात्रा में हुआ जो भवदूबर में बसहरे की छद्मियों में थी
महावीरसिंह जी के नेतृत्व में हुई।

यात्रा का प्रथम पड़ाव कल्पना-नगरी चण्डीगढ़ में था, जहाँ हम १२
भवदूबर की सुबह पहुँचे। चण्डीगढ़ भारत के बड़े शहरों से कई अर्थों में भिन्न
थी। यहाँ वह भीड़ नहीं कि दम घुटने लगे। वह माहौल नहीं कि यात्री अपने-
आपको भ्रमण-यात्रा में महसूस करें। यद्यपि जून दिनों चण्डीगढ़ राजनीतिक हलचलों
का केन्द्र था परन्तु चण्डीगढ़ की चौड़ी सड़कें, व्यवस्थित बाजार, शान्त कृत्रिम
भौल और सुन्दर परिवहन-व्यवस्था सभी अपने नागरिकों के प्रति बकादार थी।

चण्डीगढ़ भारत का एकमात्र योजनाबद्ध नगर है। क्रासिस्ली शिल्पकार
कार्बुजिए नगर को जीवित प्राणी मानते थे। नगर के सिर पर सचिवालय,
विधान सभा व उच्च न्यायालय स्थित है। मध्य में प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र
है। सबसे नीचे औद्योगिक केन्द्र है। नगर को तीसरे संस्तरों में बाँटा गया है जो
प्रत्येक भाषा भोल चौड़ा और पौन भोल लम्बा है। प्रत्येक संस्तर पूर्णतः
आत्मनिर्भर है। शहर का प्रमुख आकर्षण सुखना भीत है। इसमें सायं के
समय नौका-विहार किया जा सकता है। संस्तरों में उच्च शिक्षा के लिए
विश्वविद्यालय, पोलिटेक्नीक, आर्ट्स कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज, चिकित्सा
संस्थान आदि हैं। संस्तर न० गठारह में टैगोर थियेटर के निर्माण पर नौ लाख
रुपया व्यय हुआ है।

यह कितनी ही सक्ता था कि चण्डीगढ़ घाएँ और पिंजौर बाग और
हिन्दुस्तान मशीनरी टूल का कारखाना न देखें। जहाँ पिंजौर मुगलकालीन ऐश्वर्य
की झलक प्रस्तुत करता है वहीं हिन्दुस्तान मशीन टूल का कारखाना अपनी

वारह दिन का भ्रमण और पाँच पड़ाव

□
सुततानसिंह गोदारा

सुबह होती है, शाम होती है जिन्दगी यूँ ही समाप्त होती है।
बेहतर है जिन्दगी समाप्त होने से पहले ही तमन्नाएँ पूरी कर ली जाएँ।
कई बार तमन्नाएँ, कुछ पुरानी सार्थे मनायास ही पूरी हो जाती हैं। ऐसा ही
कुछ हमारी उस भ्रमण-यात्रा में हुआ जो प्रक्टूबर में दसाहरे की छुट्टियों में श्री
महावीरसिंह जी के नेतृत्व में हुई।

यात्रा का प्रथम पड़ाव कल्पना-नगरी चण्डीगढ़ में था, जहाँ हम १२
प्रक्टूबर को सुबह पहुँचे। चण्डीगढ़ भारत के बड़े शहरों से कई अर्थों में भिन्न
थी। यहाँ वह भीड़ नहीं कि दम घुटने लगे। वह माहौल नहीं कि यात्री अपने-
आपको अजनबी महसूस करें। यद्यपि इन दिनों चण्डीगढ़ राजनीतिक हलचलों
का केन्द्र था परन्तु चण्डीगढ़ की चौड़ी सड़कें, व्यवस्थित बाजार, शान्त हृथिम
भील और सुन्दर परिवहन-व्यवस्था सभी अपने नागरिकों के प्रति बकादार थी।

चण्डीगढ़ भारत का एकमात्र योजनाबद्ध नगर है। फ्रांसिसी शिल्पकार
कार्बुजिए नगर को जीवित प्राणी मानते थे। नगर के सिर पर सचिवालय,
विधान सभा व उच्च न्यायालय स्थित हैं। मध्य में प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र
है। सबसे नीचे औद्योगिक केन्द्र है। नगर को तीन संवटरो में बाँटा गया है जो
प्रत्येक भाषा मौल चौड़ा और घेन मौल लम्बा है। प्रत्येक संवटर पूर्णतः
आत्मनिर्भर है। शहर का प्रमुख आकर्षण सुखना भील है। इसमें सार्व के
समय नीला-बिहार किमा जा सकता है। संवटरो में उच्च शिक्षा के लिए
विश्वविद्यालय, पोलोटेक्नीक, आई.आई.टी. कलेज, इन्जीनियरिंग कलेज, चिकित्सा
संस्थान आदि हैं। संवटर न० घटाख में टैगोर थियेटर के निर्माण पर नौ लाख
रुपया व्यय हुआ है।

यह कैसे हो सकता था कि चण्डीगढ़ भाएँ और पिबोर बाग और
हिन्दुस्तान मशीनरी टूल का जलखाना न देखें। जहाँ पिबोर मुगलकालीन ऐश्वर्य
की भीली प्रस्तुत करता है वहाँ हिन्दुस्तान मशीन टूल का जलखाना अपनी

तो बढावे-जान बन गया। खैर, हिमाचल प्रदेश की बस हमें वहाँ मिल गई। बस का डिराया जहाँ दिल बहलानेवाला था, उससे अधिक वह रास्ता था जिससे हम करतारपुर पहुँचे। रास्ते में ही हमने विशाल गंगवाल पावर हाउस देख लिया, जो भापरा की बिजली का वितरण केन्द्र है।

दिल्ली, जो भारत का दिल है, दिल्ली जो भारत की राजधानी है, १६ फरवरी दोपहर को वह भी ना गई। यह विशाल ऐतिहासिक नगरी सदियों से उलार-बढ़ाव देखती आयी है। दिल्ली पाण्डवों की राजधानी रही है। पृथ्वीराज चौहान की धान-धान की यह बसाहट है। नादिरशाह और तैमूरलंग ने इसे लूटा है। मुगल मघाटो ने इसे मंजारा है। दिल्ली बार-बार उजड़ी है, फिर बसने के लिए। राजमांस व जनपथ तथा अन्य मुख्य मार्गों पर चौकती हुई परिवहन की बसें, टैक्सी व कारें, उनमें बचना हुआ राजधानी का घाम नागरिक, चाँहनी थोक व कर्नाट प्लेग की भीड़ का अधिक घनत्व। ये सभी ऐसी बिदेयताएँ हैं जो हमने दिल्ली में घाते से पहुँच गुन गयी थीं। स्पष्ट है कि दिल्ली एक नहीं बल्कि दो शहर है। पुरानी दिल्ली जो प्राचीन इमारतों व ऐतिहासिक स्थलों का सङ्ग्रहालय है। लातुफिया में दोबाने-नाम व दोबाने-घाम की स्वाधाय-कला दर्शनीय है। इसके प्रतिनिधन ज़ाया मजिद, मोहम्मद गुरदारा, बिदला मन्दिर तथा आकाश की बुगदी की छत्री हुई बुतुबमीनार जिनमें सदी हुई आलोक महात की लोहे की लाट—पुरानी दिल्ली के धारपन है। दूसरा शहर है—नई दिल्ली जिनमें भारतीयों के रूप में धर्मेश मींग रहते हैं जो धर्मेशी भाषा बोलते हैं, धर्मेशी बाना पहनते हैं, धर्मेशी की ली हुई आबादी मोपन है। राष्ट्र का धामन कार्य यही में चलता है। मन्द मन्द, राष्ट्रपति मन्द, आकाश-बाणी, तीनमूर्ति, दण्डिया मेट, मुगल बाजार का तूफानी दौरा हमने एक ही दिन में कर लिया। दिल्ली में गाँव जितनी ली यमुना किनारे राजघाट, पानिबन तथा विजयघाट के दर्शन करके।

थोड़ा पड़ाव बनाया गया ऐतिहासिक नगरी धाररा में। धाररा का नाम मुनने हो ताज की परछाईयाँ घाँवों के घाँवें नाचने लगती हैं। देशी-विदेशी पर्यटकों का समय बचन धाररा। आह बहरी की महदूर नगरी धाररा। ताजमहल देखकर न जाने कितने विचार दर्जक के मन में उठते हैं। हम में से कोई इसे मुगल स्वाधाय कला का मानदार नपुन, कोई मघाट द्वारा धरनी बेदम मुगलाज की बार में बसाया हुआ मानदार मजबरा तथा कोई कोमता हुआ यह रहा था कि आहमाह ने एक हीन ताज बनकर बसावों की मृच्छन का मजक उड़ाना है। लेकिन एक बात स्पष्ट की कि हम प्रकार दिन पर दिन करनेवाली इमारत हमने यह मज नही देखी थी। धाररा के किने के बार में छावों की राय थी कि यह दिल्ली के ताज बिने के आकार व सुदृश की दृष्टि में

बदरी केदार से मसूरी

□

राजेन्द्रप्रसाद सिंह डांगी

कल-कल करती हुई प्रवाहित पवित्र नदियाँ, गगन को स्पर्श करती हुई पर्वत शिखारें, पाताल को चीरती हुई गहरी घाटियाँ, पैदल चलते हुए अनेक राहगीर, सर्वत्र हरी मलमली सेज—देखते ही मन-मगूर नाच उठता है, जो बाँसो उल्लस पड़ता है, इच्छा होती है कि नेत्रों को उन अलौकिक दृश्यों में ही सदा के लिए जमा दे ताकि वे तृप्त रह सकें। सबके मन में एक नया उत्साह, नई उमंग थी, ऐसे प्राकृतिक दृश्यों के आनन्द-लाभ होने की।

२४ घंटों की लगातार रेल-यात्रा के बाद साहपुरा (बीलवाड़ा) से निकला २२ स्काउटरों, गाइडरों का दल १० जून को प्रातः भारत की राजधानी दिल्ली पहुँचा, जहाँ के सभी दर्शनीय स्थान लासकिला, कुतुबमीनार, बिरला मन्दिर, मैतागिरी की समाधिर्षा, इडियागेट, शीनमूर्ति भवन, अजायबघर आदि देखकर दूसरे दिन प्रातः मसूरी एक्सप्रेस से ऋषिकेश पहुँचे। रेलवे स्टेशन पर ही महाराज भरत मन्दिर इंटर कॉलेज के एक शिक्षक ने हमारा स्वागत किया और शहर के मुख्य स्थित कॉलेज के प्राचीन भवन में आवास हेतु से गये। द्विदिवसीय लम्बी यात्रा के बाद वहाँ स्वर्गाश्रम और बीताभवन के दर्शन तथा गंगा के स्नान बड़े सुखद प्रतीत हुए। समीप ही 'आरमण भूला' देखकर 'पापोनिपरिस प्रोजेक्ट्स' की स्मृति हो आयी। सध्या को हमने केदारनाथ जाने हेतु सोनप्रयाग के टिकट खरीदे। पर्यटन विकास सहकारी सघ ने टिकट देने में बड़ी मदद की और सोनप्रयाग व बद्रीनाथ के स्टेशन प्रचारियों के नाम हमें पत्र दिये, जिससे हमें वहाँ टिकट आसानी से अविलम्ब मिल सके। उनका सहयोग सराहनीय है।

जैसे स्वर्ग के द्वार खुल रहे हों, ऋषिकेश से प्रथम बसों का द्वार प्रातः साढ़े छह बजे खुलता है, उसका साम उठाया गया। दिन-भर बस की यात्रा। सड़कें तंग मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा चबकरदार। स्काउटर्स व गाइडर्स इस मार्ग की कठिनाई को सहन न कर सके, इससे कुछ दूरी तक बहूतों की तबीयत खराब

रमणीक स्थान है। चारों ओर प्रवृत्ति निखर रही है। यात्रियों के मन को मनायास ही मोह लेती है। पूजन के लिए यहाँ पर सवा रुपये की थाली मिलती है। भगवान् के मुख मुद्रा भी श्री मातिका की जाती है और स्पर्श किया जाता है। दिन-भर में मना भी भगवान् की चढ़ाया जाता है। यहाँ पर असंख्य ज्योति प्रगलित है।

पूजन करके हम खाना हो गये, बापत दूसरे धाम के लिए। मोसम प्रति धीत होने से रात्रि-विश्राम वहीं न कर रात्रि की गौरीगुह में आकर किया। एक ही दिन में तेरह मील की पैदल यात्रा, यकान सिर चढ़ घायी। मगर तप्त कुण्ड के गये पानी में पैर धोने से कुछ सह्य मिली।

चौदह जून को प्रातः हृद सोनप्रयाग आकर दिन के म्यारह बजे सवार हुए बसों में, दूसरे पावन धाम बद्रीविशाल के दर्शनो की इच्छा के लिए। एकदम बोल उठे—'जै केदार, जै बद्रीविशाल'। पीपतछोटी होते हुए हम शाम को जोशीमठ पहुँचे। यहाँ बिरला विश्राम-गृह बहुत अच्छा स्थान है। ठहरने की पूर्ण सुविधा है। जयदगुल चकराचार्य के चारों मठों में से एक मठ यही पर है। शीत-काल में श्री बद्रीनाथ की चतुर्वर्ति इसी मन्दिर में स्थापित कर छः माह तक उसकी पूजा होती है। छोटी-सी पहाड़ी बस्ती है। अच्छा भोजन प्राप्त हो जाता है। दूसरे दिन प्रातः खाना हुए—बद्रीनाथ के लिए। निमत समय पर गाड़ियों की खानगी का समय है। मिलिटरी ही इस सड़क की देखभाल करती है। जोशीमठ से दो मील पर विश्वप्रयाग है। यह इस क्षेत्र का पाँचवाँ और अंतिम प्रयाग (सगम) है। यहाँ के शायी ओर के पर्वत को नर ओर बायी ओर के पर्वत को गारामण कहते हैं। धोबी गया का प्रवाह बड़ा तेज है। मार्ग में उतार-चढ़ाव का वो कहना ही क्या, जैसे प्रब भिरे गहरे में! बहुत ही धैर्य से मोटर चलाने की आवश्यकता है। हम प्रातः नौ बजे बद्रीनाथ जा पहुँचे। १०,५०० फीट ऊँचे बर्जाले पर्वतों ने हमारा स्वागत किया। बद्रीनाथ पर्वतों की सबसे ऊँची चोटी २३,२०० फीट है। यहाँ पर काफी खुला मैदान है, जिसके एक ओर भक्तकनन्दा बहती है। बद्रीनाथ से उत्तर की ओर साठ मील की दूरी पर भक्तकनन्दा के मोड़ के साथ-साथ माना तक सड़क जाती है—जहाँ से चीन की सीमा आरम्भ हो जाती है।

बद्रीनाथ में तीन मुख्य स्थान हैं। बद्रीनाथ का मन्दिर, गर्म पानी का सोताओर बड़ा कपाली का चबूतरा। तप्तकुण्ड में स्नान के बाद बद्रीविशाल के दर्शन किये, प्रसाद चढ़ाया। प्रसाद में चने की दाल मुख्य है। शाम को भारतीय देसी, लगभग आधा घंटे तक बड़ी खय के साथ भारतीय हुई। मानन्द ही मानन्द। जो कुछ मेंट चढ़ाया जाता है वह सरकार को ही मिलता है। रात्रि एक घमंशाला में व्यतीत की। प्रातः पुनः तप्तकुण्डों में स्नान करके चल दिए

साहबेरी मार्केट में शाम की घनोन्मी चहल-चहल रहती है जहाँ नेशनल ही सर्वोपरि है।

गुरुवार को वहाँ से रवाना होकर दूसरे दिन वापस दिल्ली भा पहुँचे। स्टेशन पर श्री वृन्दा, रोबर लीडर हमें निवाने भाये। हुमायूँ के मकबरे के पास दिल्ली राज्य मारल स्काउट व गाइड के स्थायी शिविर केन्द्र पर हमारे ठहरने की व्यवस्था थी। वहाँ इतने घणिक पानी की उत्तम व्यवस्था थी कि हम धूब नहा-धो सके। दिन को नेशनल हैडक्वार्टरें भवन देखने गये। वहाँ श्री मुनील के दास, नेशनल सेक्रेटरी व श्रीमती स्नेह पटवर्धन, सयुक्त नेशनल सेक्रेटरी ने हमारा स्वागत किया। श्री दास ने हम सबों को विदेशी बँज व वोगल देकर हमारा सम्मान किया। दूसरे दिन हम अपने नगर साहपुरा भा पहुँचे।

हमारी यात्रा नूतानी थी। इन थोड़े से क्षणों में प्रकृति का जो ध्यानन्द मिला, उसकी घमिष्ट छाप रहेगी। जो कुछ देखा, उससे घोरों की तृप्ति और मन की शान्ति मिली। उन पूर्वजों की याद रह-रहकर भा जाती थी, जिन्होंने घनीतकाल से बिना किसी यातायात के साधनों के केवल भाटी के सहारे सतरे की पण्डितियों से होकर इस दुर्गम पथ की यात्रा की है। उनके मन कितने पवित्र और भाव विघाल रहे होंगे। सचमुच उन्होंने सोचा होगा कि इसी जीवन में वे महाराजा मुषिन्दिर की तरह सगरीर स्वर्गारोहण कर रहे हैं। कहा करते थे कि इस पर्वतीय भ्रंजल का एक विशेष पक्षी होता है, जिसकी 'टूलक'-'टूलक' शब्द से मिलती-जुलती आवाज है, मानो वह पक्षी सत्य की ओर बढ़नेवाले पक्षे-हारे पक्षियों को निरन्तर पर्यसरित होते रहने की प्रेरणा देता भा रहा है।

भारत के कोने-कोने से एक ही भावना से घनुप्रेरित होकर हजारों नर-नारी पर्वत प्रदेश के इस भ्रंजल में एकत्रित होते हैं, उनकी वेश-भूषा, भाषा, रहन-सहन आदि भिन्न-भिन्न होते हुए भी ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक ही मूल में बंधे हुए हैं—ऐसा बन्धन जो हमें सदियों से बाँधे हुए है, जो धार्मिक सम्भवा के आक्रमण के बावजूद भी अपरिवर्तनशील है। देश में 'धनेकता में एकता' का चित्र यहीं देखने को मिलता है।

प्रंतः में भारतीय संस्कृति और एकता की अधुण्य रखने के लिए जिन महापुरुषों ने तीर्थयात्रा की परम्परा को चलाया, अपेक्षित साधनों के अभाव में इन दुर्गम स्थलों में मन्दिर-मठों का निर्माण कराया, जो घनाधिकाल से जन-जीवन के आकर्षण के केन्द्र रहे हैं, उनके अदम्य साहस, कर्मठ व्यक्तित्व और दूरदर्शित विवेक पर अनायास ही अकित, मुग्ध और स्तब्ध रह जाना पड़ता है। यद्वा से हमारा मस्तक उनके चरणों में धवनत हो जाता है।

राजस्थान स्टेट भारत रत्नउत्सव व गाइड्स, स्थानीय एसोसिएशन, साहपुरा द्वारा आयोजित यह बद्रीनाथ-ममूरी यात्रा साहपुरा से ६ जून को शुरू

[illegible]

जीवन-यात्रा का कोलाज

□

रमेश गर्ग

मातृभूमि की यात्रा मेरे जीवन की बढोरतम घड़ियों में से कही जा सकती है। यह वही जगह है जहाँ मैं बचपन के अवोध क्षणों में धीरे उज्ज्वल भविष्य की भाशा में धपने दिन बिता चुका हूँ। बहुत कुछ प्रगति दुनिया ने की होगी, जमीन का आदमी अब चन्द्रमा पर पहुँच गया होगा, पर मेरी मातृभूमि पर लोगों की स्थिति ठीक इससे विपरीत है, वहाँ जाकर सगे-सम्बन्धियों, भरोस-पड़ोस मित्र-रिश्तेदारों के मुरभाये बेहरे, घापिक कठिनाइयों, सम्भवविश्वास में उलझी छाँटें, निम्न स्तर का जीवन, झूट-समोटा और बचपन में मेरे हृदय पर अंकित चित्र का विपरीत रूप ऐसे उपस्थित होता है कि मुझे घससा बेदना होती है। वे लोग वहाँ बीमारियों में फल रहे हैं। उन्हें आदमं जीवन की या यूँ कहिए जीवन में सफलता की, धन से रहने की या सुख से जीवन बिताने की कोई जानकारी नहीं है। वे मुझे भी वहाँ एक-दो दिन में ही इतना अधिक व्यथित कर देते हैं कि वहाँ से लौटने के बाद बितने ही दिन तो स्वस्थ होने में लग जाते हैं।

दिल्ली देखकर लगता है कि यहाँ की प्रगतिशील मानव की सोड़ और गतिविधियों ने मुझे झकझोर दिया है, मन ममोलकर रह गया हूँ। दुनिया बहुत तीव्र गति से उन्नति पर है और मैं बहुत तीव्र गति से ध्वनति की तरफ। यहाँ गाड़ी, मोटार, रेल, पेंडल टोइनेबस्तों की ऐसी तीव्र गति है कि जीवन दुबिधा में लगता है। पैसे की प्राप्ति ही धान के इस दुग में यहाँ काफी ज़ोरों पर है। इसके पीछे कुछ नूट-सछोट भी करते हैं। एशिया-उर देखने गया। अभी-अभी जो सादवना हुई थी वह यहाँ की मानवीय प्रगति को देखकर फिर उड्डिन्न हो गई है। मुझमें मही छन्दों में मानव की इस प्रगति ने हीन मानवताओं की पैदा कर दिया है। दुनिया बहुत बढ़ गई है, बढ़ रही है, कुछ तुमने किया नहीं, करोगे या नहीं ? जयपुर हाउस में बई पेंटिग्स का बलेबजन, रबोन्द्र मवन में साहित्य के बढ़ते चरण, विदेशी कला मगम का रंगमंचोय उत्थान, टाइम्स पॉक

उने के बाद मामी मुझसे पूछनी हैं, “उदास कैसे हो ? तबीयत तो ठीक है ?” निरुत्तर रहता हूँ ।

मि० स० की सचि पैसा जोड़ने में, लोगों के घर में ब्याह-शादी कराने, स्वयं को सेठ और सारी दुनिया को मित्रमने कहने में आप धादत से मजबूर । होने को मामूली फलकं हैं पर अपने-आपको पृथ्वी पर विशिष्टतम व्यक्तियों से एक समझते हैं क्योंकि चार-पाँच हजार रुपये आधी रोटी खाकर ब्याज यदि से दूसरो की आधी रोटी छोनकर डबट्ठे कर लिए हैं । हमारे घर का पक्कर इसलिए लगाते हैं कि माई इनको यह कहे कि कुछ सहायता करो और फिर न० स० उन्हें जलील करें । एक पैसे की सहायता तो करने का प्रश्न उठता ही ही । वे तो अपने पैसे के बल पर अपनी सर्वोन्नता सिद्ध करने का भीका करते हैं ।

मि० क० अपने जीवन का तो सभी अस्तित्व भूता चुके, अब अपने बच्चे को योग्य होने की इन्तजार में हैं । बच्चियाँ पागल-सी पैदा हुई हैं । पत्नी को असाध्य रोग है । बच्चे के योग्य होने में अपनी दो-तीन वर्ष लगेंगे, तब तक पत्नी को बीमारी पर रोक लगाने की सलाह दिये हुए हैं ।

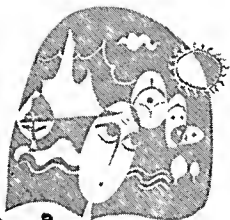
यहाँ मातृभूमि की यात्रा में इसके बाद मिलनेवाले मि० म० हैं । विगत जीवन में पहलवानी करते थे । इनका रोग-दाब देखकर राह चलता आदमी भय जाता था । अकेले लड़की बलाकर संकटों आदमियों को धरापायी कर देते । इन्हें मैं अपनी भाँखों से देख चुका था । शादी के बाद भाठ बच्चों के जन्म ने एक तो उन्हें हाथ-ठेला पकड़ा दिया । शरीर सूखकर सूँठ हो चुका है । मुझे मिलते ही घुम समाचार सुना रहे हैं—पिछले बुधवार को लड़की हुई है । मैं फिर अपनी बुद्धि में उत्तमकर गुम हो जाता हूँ और उनके द्वारा अपनी पूछी गई कुशलसेम पर उत्तर नहीं दे पाता ।

एशिया-७२ देखकर आगरा जाते समय दिल्ली में रिव-शायते की उपप्रवृत्ति कुछ अच्छी नहीं लगी कि फतेहपुरी से पुरानी दिल्ली स्टेशन छोड़कर रात्रि रुपये माँघ लिये । हमारी जानकारी में दिल्ली से आगरा का ३-४ घंटे का मार्ग जो था वह दस घंटे बाद पूरा हुआ । दोपहर दिल्ली से बड़े बजे रवाना होनेवाले हम रात ग्यारह बजे तक पत्नी और बच्चे एक ऐसी रैनगादी में सफर करते रहे थे जिसके दिब्बे की एक की छिड़की साचुन नहीं थी । मार्ग में पड़नेवाले किसी रेलवे स्टेशन पर किसी भी प्रकार की खाने-पीने की सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकती थी । रोशनी का बत्त पयूज था । यात्रियों में इन्ने-पिन्ने आदमी— कुछ हिन्दी, कुछ फोबी, दो-एक मित्रमने हमारे सहयात्री थे । हमारी ट्रेन आगरा रूट पर ही समाप्त हो गई । हम यहाँ ‘गार्ज’ की गुनाब के पुण्य में दो प्रेमियों की सबी हुई सेज में समनावस्था में देखने आये थे पर छर्दी की रात स्टेशन

यही कि जब सुबह-शाम के खाने का घाटा नहीं है तो घनी विवाह करने की आवश्यकता समझी जा रही है। जब कोई साधन पैसा जुटाने का नहीं है आखिर होगा क्या ? मैंने जैसे-तैसे सो रुपये अपने पास से यह कहकर जवाब दिये थे कि इसका घनाज खरीद लेना। अब मैं शादी में पहुँच गया हूँ। मेरे पास नहीं हैं पर इतना जरूर है कि कोई मड़बन पायी तो कहूँगा अभी उधार लेकर काम चलाओ, मैं फिर दे दूँगा। पर वहाँ देखता हूँ घर भर के लोग इकट्ठे हैं, दुनिया भर का सामान इकट्ठा किया गया है। मनोँ दही-दूध रहा है, ५०-१०० भादमी हर समय भोजन कर रहे हैं। इतने सारे रिश्तेदार इकट्ठे हो गये हैं जबकि खिलाने का कोई साधन नहीं है। चार-पाँच मिठाइयाँ न रही हैं। इस सबमे हजारों रुपये के खर्च के बावजूद भावश्यक सामग्री का जकाना नहीं है। मनोँ दूध-दही न जाने किसके लिए एकत्रित हुआ है ? बच्चे नेताहसकर रहे हैं, घोषहर के दो बच्चे मरे हैं। बच्चे खाने के लिए पिसला रहे हैं। मेरे लिए काम की कोई आवश्यकता नहीं है मिठाइयाँ बन रही हैं। बड़े-बड़े कामों पर ध्यान है, आवश्यकता पर कोई गौर नहीं—पाँच-साठ हजार का खर्चा हो गया। अधिपाँच खर्चा खाने-पीने का है। मेरी समझ में नहीं आता दूसरों से लेकर खाना घोर महान बेचकर सम्बन्धियों का मनोरंजन करना क्यों आवश्यक है। यहाँ खानेवाला क्या एक भी यह अनुभव नहीं करता कि खिलानेवाले के पास कुछ नहीं है और खिलानेवाला यह क्यों नहीं बता देता कि मैं खिलाने में प्रसमर्थ हूँ।

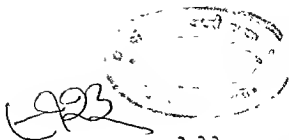
अब एक मात्रा नरकीवाड़े की भी कर नूँ। नरक की संज्ञा जिसको मैं दे रहा हूँ यह एक बड़ा शहर है। इससे पहले मैं सम्बई जैसे बड़े शहर में सम्बई भस्म तक रह चुका हूँ पर बड़े शहर की धाज जो मुझे बात धायी है वह यहाँ फैली व्यक्तिवादी स्वार्थपरता और कृत्तल मनोवृत्ति की लेकर उठी है। मैं जानता हूँ कि विश्व के सभी कोने में सम्बई कहलाने वाले व्यक्ति इन बड़े-बड़े शहरों में रहते हैं। ऐसी स्थिति में इनसे मेल न खाकर यदि विरोध प्रकट कर रहा हूँ तो भयप्य ही मुर्ख बड़ा जा सकता हूँ। दो दिन से इस बड़े शहर में आकर मुझे जो कुछ अनुभव हुआ है वह मुझे बिलकुल भंग नहीं ला रहा है। यहाँ के वातावरण ने मुझमें हीन-भावनायें पैदा कर रखी हैं, मेरा भस्त्रित्व इसने नूट लिया है और मैं अभी निश्चित भी नहीं कर पा रहा हूँ कि इन कामजों को रंगने से और भावुकता घबनाकर मुखेंता दपाने से क्या लाभ है। दुनिया का सम्ब समाज यहाँ शहरों में प्रगतिपथ पर अग्रसर है और यदि मुझे मेल नहीं खाता तो अपने विचार-बोध पर फिर से मनन करने की आवश्यकता है।

यहाँ मुझे मार्ग के राहगीरों से लेकर घर में बसे सभी लोगों का जीवन मूया हुआ, भस्त्रित्वारी, स्वाधी, कृत्तल सदा। यहाँ लोगों ने जो पहले किसी



संस्मरण तथा
ऐरवाचित्र





सभ्यता के ठेकेदार

बोणा गुप्ता

ज के समाज में ऐसे कितने ही इंसान हैं जो अपने को बड़ा सभ्य, पढ़ा-लिखा और सनीकेवाला कहते हैं। परन्तु जब कभी ऐसे कुछ लोगों से वास्ता पड़ता है दंग रह जाती है। बहुत-से ऐसे लोग हैं जो देखने में तो गुड देसी भी हो गते हैं। परन्तु उन्हें जब पाम से देखो तो पता चलता है खाली मुगल्य ही थी थी की थी, वास्तविकता में तो केवल जनशक्ति ही था।

बात केवल इतनी-सी है कि लोग जब अपने की बहुत सम्म बताते हैं तो यह समझते हैं कि सकेद और प्रेस किये रुपड़े पहनकर या टाई गते में सटका-र ही सम्मला का साया कोष उनके ही अधिकार में आ गया है। हासत यह होती है उनको अपनी तरह बैठना, बात करना या खाना भी नहीं आता।

पानी की रट

कुछ ही दिनों की बात है कि एक महाशय हमारे यहाँ खाने पर धावे थे। मेरे पति के अच्छे पिर हैं। उनको नई-नई धादी हुई थी। सो बड़े पाव से मज-पदकर अपनी पत्नी के साथ धावे और ट्राइंगल में ऐसे सजे कि बस कुछ मउ पूछो, उन्हें अच्छी तरह मान्य या कि घर में काम करने के लिए मैं धवेती थी। फिर भी हर पाँच-दस मिनट बाद 'पानी चाहिए, पानी चाहिए' की रट लगाते रहे। मेहमान पाण्डित मेहमान होता है। बीच-बीच में काम छोड़कर उन्हें पानी पिलाना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि खाना बनने में देरी हो गई। खंड, खाना तो खाना ही क्या और वे सज्जन बने बने। धमने दिन उन्होंने अपने एक मित्र को बताया कि हमारे यहाँ खाने में काफी देर होने के कारण उनका फिल्म का समय निकल गया और भूख मारक हो गया। जब मुझे इसका पता चला तो बहुत कोष धाना। सोचा, यदि उन्हें फिल्म देखनी थी तो पहले बहते या फिर उनकी थीयती को काम में मेल हाथ बंट देती।

नाक साफ करती

परतों की ही तो बात है, मैं अपनी एक महेली के घर गई थी। शिष्ट से उसने चाय को पूछ लिया। फिर वही परेशानी। मुझे चाय की इच्छा कभी होती नहीं और धावकत जहाँ जायो चाय के प्रतिरिक्त कुछ भिन्नता नहीं। खैर, उसके काफी जोर देने पर मैंने मान लिया। कुछ देर में वह पकौड़े भी तैयार ले आयी। प्लेट मेज पर रखकर वह सामने बैठ गई। बैठना था कि उन्हें एक छीक आयी। छीक घाते ही उन देवी जी ने सीधे हाथ की घंगुली और घंगूटे के बीच अपना नाक दबाया और ढेर-सा गन्द निकाल बाहर किया। हाथ को न पोछा, न साफ किया, उठाया पकौड़ा और गप से मुँह में। इतना सब देखने के बाद किसी इच्छा खाने को करेगी! किसी तरह खाली चाय पीकर वहाँ से भाग आयी।

इन्हें कौन सिखाए !

भग्न एक दृष्टि यदि प्राय के इन सबके और सम्पत्ता के ठेकेदारों पर डालें तो पता चले कि वास्तव में वे कितना कुछ जानते हैं। इतनी शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी यदि मनुष्य को ये छोटी-छोटी बातें सिखानी पड़ें तो कौन सिखाए ! ये बातें ऐसी हैं कि न तो कोई यह सकता है और न ही कोई टोक सकता है। हाँ, अच्छी परेनू परम्परा से यदि माता-पिता बच्चों को शुरू में ही ये बातें समझाते रहें तो कुछ बात बन सकती है और तोय हम तरह से दूसरों की पैनी निगाह से बच सकते हैं।

विद्यार्थी-जीवन में हमारी हमेशा यह कोशिश रही कि हम सरारतें भी करते रहें तथा हमारे बुजुर्ग एवं अध्यापक हमें शरीफों की पक्ति से भी न निकालें। आप सच मानिए, हम अपनी कोशिश में सफल रहे। मुहल्ले के बुजुर्ग तथा हमारे अध्यापक हमें अपने मुहल्ले और विद्यालय का सबसे शरीफ विद्यार्थी समझते थे और उनकी दृष्टि से प्रोन्नत हम विद्यालय तथा मुहल्ले में विद्यार्थियों की सरारती गतिविधियों के संचालक थे।

हम अपने पिताजी की एकमात्र संतान हैं मत कम उम्र में ही हमारे गले में विवाह की फाँसी लगना आवश्यक था। नतीजा यह हुआ कि हम विद्व-विद्यालय स्तर तक, दृष्टा होते हुए भी, अपना अध्ययन मनवरत न रख सके और हमारे सब सपने, वर्षा घाने पर कच्ची भीत की माँति, श्रीमती जी के गृह-प्रवेश के साथ ही दह गये। हम मजबूर होकर सबसे शीघ्र और मासानी से प्राप्त अध्यापक की बीकरी करने लगे।

निरन्तर आठ वर्ष तक चाक घिसने के पश्चात् हमारे घूमिल जीवन में विद्यार्थी-जीवन-रूपी प्रभात का आलोक पुनः प्रकट हुआ और हम एक कॉलेज में विद्यार्थी अध्यापक के रूप में बी. एड. की ट्रेनिंग के लिए प्रेषित हुए। हमारे मस्तिष्क में पुनः वे ही विद्यार्थी-जीवन की सरारतें कुत्ताचें मरने लगी और हम ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में रहने लगे कि कब सरारत करने का सुपवसर घाये। वैसे कॉलेज में हम बी. एड. की ट्रेनिंग लेते नहीं हुए थे, सरारतों की ट्रेनिंग लेते नहीं। आखिर हमारी मोन-साधना रंग लायी और एक दिन ऐसा आया कि हम एक के बाद एक तीन सरारतें कर बँडे उस दिन।

हुआ यों कि हमारे प्रिंसिपल साहब हमें मनोविज्ञान पढ़ाते थे। नाइत्ज़काकी यह थी कि उनका पीरियड मध्याह्नर से पूर्व आता था। आप पढ़ाते-पढ़ाते इतने खो जाते थे कि पूरा मध्याह्नर का समय भी अपने कालाश में ले लेते थे। सारी कक्षा मन मसोसकर रह जाती थी। न कोई पेनाब की हाजत मिटा सकता था और न कोई बोर्डी-सिगरेट, चाय-पान की दृष्टा पूरी कर सकता था। एक दिन एक साथी ने मुझसे कहा, "बारे सजल, इस छूसट प्रिंसिपल को कोई ऐसा सबक दो कि यह मध्याह्नर तो खराब न किया करे रोज। मैं तुम्हें थाम पिलाऊँगा।" उस रोज मैं जान-बूझकर अपनी पक्ति में जाकर बैठ गया। कोलाश शुरू हुआ। प्रिंसिपल साहब कक्षा में शरीफ लाये और शुरू हो गये। मध्याह्नर का पीरियड लगा। मैंने हल्के-से खाँसा, प्रिंसिपल साहब की निगाह मुझ पर पड़ी और मेरी निगाह अपनी कलाई पर बँधी पड़ी पर। उन्हें समझते मैं एक पल न लगा और बोले, "क्षमा करना, अभी एक मिनट में क्लाम छोड़ता हूँ।" और वे सचमुच एक मिनट पूर्व ही कक्षा से बाग़-पन सनेटकर पीठ दिखाते नजर भाये। वे हमारे मित्र तो हमारी हरजत समझ गये। मूनिषन का

विद्यार्थी-जीवन में हमारी हमेशा यह बौधिस रही कि हम शरासतें भी करते रहें तथा हमारे बुजुर्ग एवं अध्यापक हमें शरीरों की पक्ति से भी न निकालें। आप सुच मानिए, हम अपनी कोशिश में सफल रहे। मुहल्ले के बुजुर्ग तथा हमारे अध्यापक हमें अपने मुहल्ले और विद्यालय का सबसे शरीफ विद्यार्थी सम्मानित थे और उनकी दृष्टि से मोझल हम विद्यालय तथा मुहल्ले में विद्यार्थियों की शरासती गतिविधियों के संचालक थे।

हम अपने पिताजी की एकमात्र संतान है मतः कम उम्र में ही हमारे गले में बिबाह की काँची लगना आवश्यक था। नतीजा यह हुआ कि हम विद्य-विद्यालय स्तर तक, इच्छा होते हुए भी, अपना अध्ययन मनवरत न रख सके और हमारे सब सपने, बर्षा माने पर कच्ची भीत की भाँति, श्रीमती जो के गृह-प्रवेश के साथ ही बह गये। हम मजबूर होकर सबसे शीघ्र और मासानी से प्राप्त अध्यापक की नौकरी करने लगे।

निरन्तर आठ बर्ष तक चाक घिसने के पश्चात् हमारे घूमिल जीवन में विद्यार्थी-जीवन-रूपी प्रमात का झालोक पुनः प्रकट हुआ और हम एक कॉलेज में विद्यार्थी अध्यापक के रूप में बी. एड. की ट्रेनिंग के लिए प्रविष्ट हुए। हमारे मस्तिष्क में पुनः वे ही विद्यार्थी-जीवन की शरासतें कुलार्थ भरने लगी और हम ऐसे भवसर की प्रतीक्षा में रहने लगे कि कब शरासत करने का सुमवसर आवे। वैसे कॉलेज में हम बी. एड. की ट्रेनिंग लेने मर्ती हुए थे, शरासतों की ट्रेनिंग लेने नहीं। आधिर हमारी मोन-सापना रन साथी और एक दिन ऐसा आया कि हमें एक के बाद एक तीन शरासतें कर बैठे उस दिन।

हमारा यों कि हमारे प्रिंसिपल साहब हमें मनोविज्ञान पढ़ाते थे। नाइलकाकी यह थी कि उनका पीरियड मध्यान्तर से पूर्व आता था। आप पढ़ाते-पढ़ाते इतने हो जाते थे कि पूरा मध्यान्तर का समय भी अपने कालाँस में ले लेते थे। सारी कक्षा मन मसोसकर रह जाती थी। न कोई पेन्सिल की हाकल मिटा सकता था और न कोई बोड़ी-सिगरेट, चाय-पान की इच्छा पूरी कर सकता था। एक दिन एक साथी ने मुझसे कहा, "थार सजल, इस खूसट प्रिंसिपल को कोई ऐसा सबक दो कि यह मध्यान्तर तो खराब न किया करे रोज। मैं तुम्हें पाय पिलाऊँगा।" उस रोज मैं जान-बूझकर घबली पक्ति में जाकर बैठ गया। कालास शुरू हुआ। प्रिंसिपल साहब कक्षा में तसरीफ साथे और शुरू हो गये। मध्यान्तर का पीरियड लगा। मैंने हल्के-से खाँसा, प्रिंसिपल साहब की निगाह मुझ पर पड़ी और मेरी निगाह अपनी कलाई पर बँधी बड़ी पर। उन्हें समझने में एक पल न लगा और बोले, "क्षमा करना, अभी एक मिनट में क्लास छोड़ता हूँ।" और वे सबमुच एक मिनट पूर्व ही कक्षा से नागज-पत्र समेटकर पीठ दिखाते नजर भागे। वे हमारे मित्र तो हमारी हरकत समझ गये। मूनिदन का

हमने उनसे प्रज किया, "क्यों मायुर साहब ! आप बताइये कि जब कोई वरिष्ठ अध्यापक होता है तब तो उसमें एक ही विषय की योग्यता होती है किन्तु प्रधान-अध्यापक होते ही उसमें सभी विषयों का ज्ञान कैसे समाविष्ट हो जाता है !"

इतना सुनना था कि हमारे साथी तथा उनके साथी इतनी जोर से हँसे कि रेस्तराँ के माहौल पर बह हँसी एक आकण्ठ बनकर छा गई । नतीजा यह हुआ कि मायुर साहब अपने साथियों को वहीं छोड़कर खिसियाने-ले भाग गये । ये घटनाएँ जब झकेले में भी स्मरण हो आती हैं या साया लोग मिलने पर दुहरा देते हैं, तो बरबस हँसी फूट पड़ती है और हम मन-ही-मन सोचने लगते हैं कि कान, ऐसी शरारतों के लिए फिर मिल जाये—विद्यार्थी-श्रोत ।

कला से सम्बन्धित विषयों पर ध्यान देने से कला के प्रति हमारे मन में एक नया भाव उत्पन्न होता है। कला हमारे जीवन में एक नया आयाम जोड़ती है। कला हमारे मन को शांत रखती है। कला हमारे जीवन को सुन्दर बनाती है। कला हमारे जीवन को एक नया आयाम जोड़ती है। कला हमारे मन को शांत रखती है। कला हमारे जीवन को सुन्दर बनाती है।

২৯ 'জুলাই ১৯৬৬

। महर्षि दण्डि ऋषिः

[illegible]

୧୯ 'ସ୍ଥାପତି' ୦୬

11. 12. 13.

[illegible]

उषा पतास आदि पुष्प, मंत्ररी से लदे रसालवृक्ष के मध्य जीव-विहीन उपवन का दृश्य घोर बहाने पर विध्याम लेती यह यकिन नारी विरहिणी की अन्तर्मयथा के साथ-साथ शत्रु-साम्राट की प्रत्येकियों से सम्मोहित हो ऐसा धामास दे कि रहा नहीं जा सके कि यह 'विप्रलम्भा' है या 'वामरसज्जा', 'रूपगविता' है या 'पोषितपतिका' ।

मेरे इस प्रयास में एक सप्ताह से जी सफलता नहीं मिल रही थी उससे बड़ी बेचैनी थी । आज एकाएक इस आकृति की सफलता पर घोर स्त्री के सौन्दर्य पर मैं विचलित हो गया हूँ । मैं उसके सामने एक सन्धे समय तक बैठा हुआ सब यह भूल-सा गया हूँ कि वह एक चित्र है क्योंकि ऐसी अपूर्व सुन्दरता तो मैंने पहले कभी पर जगत में देखी नहीं, उस पर बसन्त से लवाजब भरी हरियाली में किसी सुन्दर स्त्री का इस प्रकार स्थिर लटे रहना और उसे घटी सामने बैठकर निहार पाना बस जगत में तो सम्भव नहीं और सबल सौन्दर्य मुझे इस प्रकार विचलित कर असह्य कर देगा, यह आज ही अनुभव हुआ ।

२६ जुलाई, ७२

चित्र वसन्तोत्थास की देखने के लिए कुछ दर्शक एकत्रित हो गये हैं । वे स्त्री के रंग-सौष्ठव, स्वर-माधुर्य और भावमग्नता की ओर खूबकर प्रसन्ना कर रहे हैं पर मैं देख रहा हूँ कि वसन्त के उत्थास की गहराई में तो एक-दो ही दर्शक पहुँच पा रहे हैं । 'स्त्री' के सौन्दर्य पर रोझकर भाव-मस्तिष्क अधिक कुठित हो गया है । एक महानुभाव पर कुछ नये की-सी प्रतिक्रिया देखी गई । एक सज्जन स्त्री के मुख पर हँसी की झलक देने की जिद्द करते रहे । एक अन्य साथी आकृति की मांसल चिकनाई पर रोझते रहे और इस चित्र के धागे दस व्यक्तियों की दस प्रकार की प्रतिक्रिया सुनना रोचक लगा और उनसे प्राप्त अनुभव आवश्यक भी थे ।

७ अगस्त, ७२

आज यहाँ ही 'वसन्तोत्थास' को घर से बिदा करने को प्रस्तुत हुआ कि बीस दिन से ठहरी हुई वर्षा शुरू हो गई । चित्र की वह आकृति वर्षा में भिगोने के लिए घर से निर्वासित कर दी गई । इतने दिनों से जिसे दिल में लगा रखा था भीगने के लिए छोड़ दी गई । घर से बाहर उस श्रिय, वीरल, सुन्दर, मधुर, भावुक, धारामय, गृहवासिनी, मुहासिनी को क्या-क्या महन करने पड़ेंगे, कुछ भी विचार नहीं किया । इसीलिए तो मुझे दूर करके कोई चित्र को मैं प्रसन्न नहीं होता । लोगों में तो इतना भी बोध नहीं । बोई वह रहा था, 'इस बक्से में क्या है ? फ्रिज के बोस्टर हैं क्या ? दूरान के साइनबोर्ड होंगे,

[illegible]

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥

၂၂၂၂၂၂
 ၂၂၂၂၂၂
 ၂၂၂၂၂၂

तथा पलास आदि पुष्प, मंजरी से लदे रसालवृक्ष के मध्य जीव-विहीन उपवन का दृश्य घोर वहाँ पर विधाम लेती यह शक्ति नारी विरहिणी की अन्तव्यंगा के साथ-साथ शत्रु-सम्राट की प्रछेदियों से सम्मोहित हो ऐसा धामास दे कि कहा नहीं जा सके कि यह 'विप्रलब्धा' है या 'वासकसज्जा', 'रूपगविता' है या 'पोषितपतिका'।

मेरे इस प्रयास में एक सप्ताह से जो सफलता नहीं मिल रही थी उससे बड़ी बँधेनी थी। आज एकाएक इस आकृति की सफलता पर घोर स्त्री के सौन्दर्य पर मैं विचलित हो गया हूँ। मैं उसके सामने एक सप्ते समय तक बैठा हुआ जब यह भूल-सा गया हूँ कि वह एक चित्र है क्योंकि ऐसी अपूर्व सुन्दरता तो मैंने पहले कभी चर जगत में देखी नहीं, उस पर बसन्त से लवालब भरी हरियाली में किसी सुन्दर स्त्री का इस प्रकार स्थिर लेटे रहना और उसे घटो सामने बैठकर निहार पाना बस जगत में तो सम्भव नहीं और जबल सौन्दर्य मुझे इस प्रकार विचलित कर असहाय कर देता, यह आज ही अनुभव हुआ।

२६ जुलाई, ७२

चित्र बसन्तोत्थास को देखने के लिए कुछ दर्शक एकत्रित हो गये हैं। वे स्त्री के भंग-सौष्ठव, रूप-भाव्य और भावमयिमा की तो खूबकर प्रशंसा कर रहे हैं पर मैं देख रहा हूँ कि बसन्त के उत्थास की गहराई में ही एक-दो ही दर्शक पहुँच पा रहे हैं। 'स्त्री' के सौन्दर्य पर रोभाकर मानव-मस्तिष्क अधिक कुठित हो गया है। एक महानुभाव पर कुछ नये की-सी प्रतिक्रिया देखी गई। एक सज्जन स्त्री के मुख पर हँसी की झलक देने की जिद्द करते रहे। एक अन्य साथी आकृति की भावना चित्रनाई पर रोभाते रहे और इस चित्र के प्रागे दस व्यक्तियों की दम प्रकार की प्रतिक्रिया सुनना रोचक लगा और उनसे प्राप्त अनुभव आवश्यक भी थे।

७ अगस्त, ७२

आज ज्यों ही 'बसन्तोत्थास' को घर से बिदा करने को प्रस्तुत हुआ कि बीस दिन से ठहरी हुई वर्षा शुरू हो गई। चित्र की वह आकृति वर्षा में भिगोने के लिए घर से निर्वासित कर दी गई। इतने दिनों से जिने दिन में लगा रखा था भीगने के लिए छोड़ दी गई। घर से बाहर जग प्रिय, रोमन, सुन्दर, मधुर, भावुक, आरामप्रिय, गृहवासिनी, मुद्रामिनी को क्या-क्या कष्ट महन करने पड़ेगे, कुछ भी विचार नहीं किया। इसीलिए तो मुझसे दूर करके कोई चित्र को मैं प्रसन्न नहीं होता। लोगों में तो इतना भी बोध नहीं। कोई कह रहा था, 'इस बच्चे में क्या है? पहलू के पोस्टर है क्या? दादा के साइडबोर्ड की



हास्य
तथा व्यंग्य



क्यू में खड़ा आदमी

□
ग्रोम थरोड़ा

जब देश आजाद हुआ था तो एक खेल हुआ था, जिसको 'म्यूजिकल चेयर' कहते हैं। इस खेल में थोड़ी-सी कुर्सियाँ होती हैं और बहुत सारे आदमी होते हैं। संगीत बजना शुरू होते ही सब लोग कुर्सियाँ लेने के लिए दौड़ते हैं। जो ज्यादा कुर्तिली और चुस्त होते हैं वे कुर्सियाँ दबोच लेते हैं, लोग लोग खड़े ताकते रह जाते हैं। भारत में जब आजादी का संगीत बजता था वही खेल हुआ। जो चुस्त और बालाक थे उन्होंने कुर्सियाँ दबोच ली और बाकी सारा देश टांगी के भार खा रहा था। जिन्होंने कुर्सियाँ दबोच ली वे आराम से बैठ गए और बसम खा ली कि सारी उम्र इन्हीं कुर्सियों पर बैठे रहेंगे और कोशिश करेंगे कि मौत के बाद भी कुर्सी उनके साथ जाए ताकि स्वर्ग या नर्क में बैठने का कोई कंझट न रहे। जो लोग (यानी सारा देश) खड़े थे उन्हें उन्होंने आदेश दिया कि वे 'क्यू' बनाकर खड़े हो जाएँ और तब तक खड़े रहें जब तक आजादी नम्बर दो नहीं मिल जाती और नई म्यूजिकल चेयर का खेल नहीं होता।

इस प्रकार उस महान्-देख में 'क्यू' की महान परम्परा की शुरुआत हुई, और वह परम्परा अभी तक धरकरार है। कुछ लोग राशन की क्यू में खड़े हैं, तो कुछ लोग क्यू में इसलिए खड़े हैं कि उन्हें उस बस का इन्तजार है जो उन्हें ऑफिस में ले जाएगी। कुछ लोग क्यू में खड़े रहकर सिनेमा का टिकट कबाड़ना चाहते हैं। ऐसे लोग बड़े मजेश्वर बिस्म के होने हैं। वे सोम छत्तीस साल से केवल इसीलिए क्यू में खड़े हैं कि तीन घंटे आराम से कुर्सी पर बैठकर खयाली दुनिया देखकर काट सकें। क्यू में तपस्या करने के बाद इन लोगों को ऐसी दुनिया दिखाई जाती है जिसमें एक बलक के पास बार होती है और एक मजदूर के पास बडिया फर्श होता है। इन सब किस्म की क्यूओं में सबसे लम्बी क्यू रोजगार-शिलाऊ दफ्तर के घागे लगी हुई है। इन क्यू की सम्बाई नापने के लिए देश-भर के नेता और आकड़ेबाज जमे हुए हैं, पर अपने-आपको असफल पा रहे हैं। वे जितना इस क्यू को सुबह से शाम तक नापते हैं उतनी ही वह रात-रात में

टाँगों पर खड़ा रहता है और फिर बारी-बारी से दाहिनी और बायीं टाँग पर खड़ा होना शुरू हो जाता है और यह क्रम तब तक चालू रहता है जब तक कि खड़ा होनेवाला या तो क्यू के अन्तिम सिरे पर नहीं पहुँच जाता या बेहोश होकर गिर नहीं जाता। अगर क्यू में कोई आदमी बेहोश होकर गिर जाता है तो उसके पीछे खड़े लोगों को बड़ी खुशी होती है, क्योंकि क्यू में खड़ा प्रत्येक आदमी मन ही मन यह प्रार्थना किया करता है कि हे भगवान् ! मेरे आगे खड़े सब लोगों को ठिकाने लगा दे।

उदाहरण के लिए, मेरे पास पिछले दिनों चली मुक्त योजनाओं के परिणाम-स्वरूप कपड़े धोने का इतना पाउडर इकट्ठा हो गया है कि अब मुझे आनेवाले दस साल तक कपड़े धोने का पाउडर खरीदने की आवश्यकता नहीं है।

मेरी पत्नी का विचार है कि मुक्त के चक्कर में मैं न केवल घनाप-घनाप वस्तुएँ खरीद लाता हूँ बल्कि उनके पैसे भी ज्यादा दे जाता हूँ। पिछले दिनों मैंने टैंकम पाउडर के दो डिब्बे खरीदे जिनके साथ पूरे तीन ब्लेड मुफ्त मिले थे। पत्नी का कहना है कि ब्लेड मुश्किल से पचास पैसे के होंगे जबकि पाउडर का मूल्य मैं एक रुपया ज्यादा दे गया। वह ऐसा सोचती है क्योंकि उसे मुक्तवादी दर्शन का ज्ञान नहीं है। मुक्तवादी दर्शन के अनुसार महत्त्व इस बात का नहीं है कि पाउडर की कीमत कितनी ज्यादा लगी बल्कि महत्त्व उस खुशी का है जो तीन ब्लेड मुफ्त प्राप्त होने पर होती है। यह खुशी कुछ बंसी ही होती है जैसी किसी जेबकतरे को जेब सफलतापूर्वक बाट लेने पर होती है। बाद में चाहे उसे पता चले कि वह उसकी अपनी ही जेब थी।

जिस वस्तु के साथ मुक्त प्राप्त होने का आभास जुड़ा हो, उसके उपयोग में जो आनन्द प्राप्त होता है, वह खरीदी हुई वस्तु में दुर्लभ है। मुक्त मिली हुई साबुन की टिकिया से जब मैं स्नान करता हूँ तो लगता है, महंगाई और दुश्मानदारों की ठगने की धारत मेल बनकर बह रही है। परोपकार साबुन के भागों के रूप में सर्वत्र व्याप्त रहा है। साबुन मुक्त देनेवालों कम्पनी की बॉक्स की भीनी-भीनी सुगन्ध स्नानघर के वातावरण में फैल रही है। इस प्रकार की अनुभूति का केवल मुक्त के साबुन के उपयोग से ही प्राप्त हो जा सकती है। महंगाई के इस जमाने में खरीदी हुई साबुन से तो घाँघें चिरमिराने लगती हैं और शरीर में जलन शुरू हो जाती है। बिज्जापनों में घाँघें अच्छे-बले लोगों को रही वस्तुओं की प्रशंसा करते हुए देखा होगा। वास्तव में कम्पनी उन्हें ये वस्तुएँ मुफ्त देती हैं इसलिए उन्हें इनमें इतने गुण दिखाई देने लगते हैं।

मुझे काउंटर पर रखी किसी वस्तु पर जब भी 'मुक्त' लिखा हुआ दिखाई देता है तो जी करता है उसे उठाकर सिर पर पोंब रखकर नाच मारें लेकिन अपनी इस आदिम इच्छा को दबाकर उस वस्तु का दाय बूझता हूँ, इसके साथ 'वह' मुफ्त मिल रही है। कई बार यह देखकर बड़ी परेशानी होती है कि जो मुफ्त मिल रहा है और जिसके लिए पैसे देने पड़ रहे हैं, दोनों में कोई तानमेल नहीं है। सोचिए, धाय के साथ रुमाल का क्या मेल है? हाँ, धाय को कपड़ों पर बिँधेरकर रुमाल में पोछने का इच्छा हो तो बात अलग है। रूपांश के साथ महाने का साबुन देने की क्या मुक्ति है?

घांपट कुछ न कुछ मुक्ति होती जरूर है। कई बार यह मुक्ति जग बाद में कर्म में आती है। एक बार कपड़े धोनेवाले पाउडर के डिब्बे में से एक टिकिया

1. 凡屬我國人民，不論男女老幼，均應遵守法律，不得有違法亂紀之舉。
2. 凡屬我國人民，不論男女老幼，均應遵守法律，不得有違法亂紀之舉。
3. 凡屬我國人民，不論男女老幼，均應遵守法律，不得有違法亂紀之舉。
4. 凡屬我國人民，不論男女老幼，均應遵守法律，不得有違法亂紀之舉。
5. 凡屬我國人民，不論男女老幼，均應遵守法律，不得有違法亂紀之舉。

दाढ़ी

०

मुचल ठारवानो

मर्दी मुक हो गई थी और मर्दों के साथ ही हमारी मुली भी जाए बरहने लगी। सवेरे-भवेरे दाढ़ी बनाना हमें बंने ही गलने लगा जैसे कि लोणा की टकमईशन देना गलता है। दाढ़ी बनाने में हमारे मामने कई दिक्कतें छानी थी। कभी दाढ़ी बनाने बैठे तो ऐदिय दाँत से झेड़ ही नकारा होता। कभी झेड़ होता भी तो चाभी दाढ़ी बनाने के बाद हमें सहपुन होता कि यह उस झेड़ से पूरी दाढ़ी नहीं बनाई या मरती और हमारी दाढ़ी मानन मरकार की झेड़नाली की तरह झपूरी रह जाती। फिर हम नास्तिक होने हुए भी मदवान की मुक्ति के घामे आकर प्रापेना करते—हे भयवान्, अपने किसी मर की भेड़ को कि हमारे लिए बाजार में झेड़ ला गके। किसी ने मर ही कहा है कि मुनीबन के समय ही घादमी की ईदर की याद छानी है और हम मोचन मदते कि कबीर ने हम-जैलो के लिए ही कहा होगा।

हुल में मुनिरन सब करे, मुल में करे न बोध।

जो मुल में मुनिरन करे, हुल बाहे की होय।

ऐसे धरमरो पर ईदर हमारी धरमर मुन जेता है और हम विराज हो जाता कि ईदर धरम मरदनी और नास्तिकता से कोई धरम नहीं मरदना। हम ईदर की यह समझता पकड़ छोटी मोचन हम तो इन धरमों के कि झेड़ साथ हमें पर ईदर में मरदनाक प्रापेना थी हब मरदनी। कभी धरमर दिम की मूर्ती का कई। मूर्ती मरद छोटी, हमने दाढ़ी बनाने की मूर्ती कर दी। मोचा, यह बहुत मुझे देना आदर, यह भी मरद मुलानी है धरमर की मूर्ता मरद। लेकिन यह 'मरद' छोटी छोटी कि हमारा मरद मुला तो हम धरमर के इन मरदोंक मूर्त मरद कि हम धरम की और धरमर के मूर्ता हम मरदना व मूर्ता। हमें मु हमने छोटी की मरद देना।

हमारी छोटी की मरद देना मरद देना मरद मरद मरद कि मरदनी की

निश्चय किया इन प्रश्नों को हमेशा-हमेशा के लिए खत्म करना। जब एक सज्जन ने हम से दाढ़ी के बारे में प्रश्न किया तो हम बोले—

“वास्तव में हम एक सवें कर रहे हैं।”

“सवें? कंसा सवें?”

“इस सवें में हम यह ज्ञात करेंगे कि इस नगर में मूखों की संख्या कितनी है।”

“मूखों की संख्या आप कैसे ज्ञात करेंगे?”

“बड़ा सरल-सा उपाय है। जो भी हमसे यह प्रश्न करता है कि हमने दाढ़ी क्यों रखी, हम उसका नाम तुरन्त मूखों की लिस्ट में लिख लेते हैं। जब पूरे मूखों की—”

वह सज्जन पूरी बात सुने बिना ही ऐसे गायब हुए जैसे कि कर्जदार महाजन को देखकर गायब हो जाता है। जब एक अन्य सज्जन ने इसी प्रकार हमसे सवाल किया तो हमने उत्तर भी सवाल में इस प्रकार दिया—

“आपने यह साफ़ क्यों पहना हुआ है?” प्रश्न का उत्तर प्रश्न में पाकर वह पबराये। फिर कुछ संवत होकर बोले, “यह तो घरनी-घरनी ‘लाइकिंग’ है।”

“तो घरनी भी ‘लाइकिंग’ है दाढ़ी बटाना।”

वह घरना-सा मूँह सेकर पले गये।

किन्तु जैसे हमने सबको काटा, पत्नी को नहीं काटा जा सकता था। हमारी एक बाक्य ने मरद को जो कि हमने किसी पत्रिका में पढ़ा था। इस बाक्य ने रामबाण का काम किया और वह फिर कुछ न बोली। वह बाक्य था, “दाढ़ी तथा मूँछें अच्छी नुडि की तरह हैं जो कि मनुष्य को समय के पूर्व नहीं घाती और महिला को बिलकुल ही नहीं घाती।” इसके बाद मुझे किसी भी बटिनाई का सामना नहीं करना पड़ा और घाब भी मेरी दाढ़ी सतायत है।

जीवा हैं जो प्रकसर उनके चक्क्यूहों से घिर जाते हैं और उनके निशानों का टारगेट बनते हैं तो हमारी क्या स्थिति होती होगी—अनडिफाईनेबल ।

मैं सोचता हूँ अभिमन्यु चक्क्यूह में घुसना तो कम से कम जानता ही था चाहे निकलना उसे न मालूम हो । पर भाई साहब, हमारी सालियों का चक्क्यूह मजबूत ही है—उस-जैसे दस अभिमन्यु फँसकर चक्कर खा जायें । यह चक्क्यूह हमारी ओर स्वतः ही बन जाता है और उस समय हमें अपनी स्थिति ठीक ऐसी मालूम होती है जैसे मकड़ी के जाले में कीड़े की होती है । वहाँ तो कीड़े को सिर्फ एक ही मकड़ी से संपर्क करना होता है पर यहाँ तो हमें कई सालियों से पाला पड़ता है सीधा ! ठहरिये, जरा मैं पत्तीना पीछ लूँ और हाँ, मैं कुछ हाँफने भी लगा हूँ—जरा सोस पर काबू पा लूँ ।

हाँ, तो मैं अपनी सालियों का इंट्रोडक्शन दे रहा था । अब तक आप भी जरा संस्था से लगनेवाले भटके के लिए तैयार हो गये होंगे—“जी हाँ—हमारी सात सालियाँ हैं—पूरी सात, एक भी कम नहीं । जग न आपके भटका ! खैर, ये भटके तो लगते ही रहते हैं, हमारे लिए इनकी कोई इम्पोर्टेंस नहीं रह गई है । इन भटकों के मलावा दिल के दोरे पड़ते हैं और साथ ही मुँह की खानी पड़ती है । किस्मत की मार खानी पड़ती है, और जाने क्या-क्या खाना पड़ता है ।

हमारी सबसे बड़ी साली का नाम है कुमारी कूलकुमारी और उसका बज्रन दो मन के लगभग है । छोटी-मोटी चारपाई और साधारण कुर्सी उनका भार वहन करने में अपने आपको असमर्थ पाती हैं । बज्रन तोलनेवाली मशीन पर उनका बज्रन तोलने के बाद ‘माउट प्रॉफ़ प्रॉडर’ की तकली लगा दी जाती है । इसीलिए बज्रन तोलनेवाले उनसे कुछ चाजें करने के बजाय उनको चाजें देना पसंद करते हैं और कहते सुनाई पड़ते हैं, ‘बहन जी, जरा कुना करना गरीब पर’... और ‘इस मशीन पर’... कूलकुमारी की सबसे प्रिय हॉबी है पकोड़े, कबोड़ी और गोल-गप्पे खाना । छोटा-मोटा खोपवा तो देखते-देखते ही खाली हो जाता है । वैसे उनकी सेहत का राज भी गोल-गप्पे है ।

हमारी दूसरी साली है कुमारी रूपवती । बस तब के रंग से बहुत अधिक नहीं, थोड़ी-सी ही अधिक है—यों समझिये जल्दीस-बोध का घन्तर है । रंग पक्का है । कुमारी रूपवती से जब भी मिलना चाहे वह ड्रेसिंग टेबुल के सामने अपनी अलहद जवानी को भाँटने में निहारती या सौन्दर्य निखारने का कोई न कोई नुस्खा पढ़ती या तैयार करती पायेंगी । महोत्सव में तीन-चार दण्ड तोड़ देना तो उनके लिए मामूली बात है । पाउडर और फ्रेश उनके लिए थोक से माला है । जब-जब अपनी दावत निहारते हुए हाथ से घिरकर दण्ड टूट है, हमने माह भरते हुए कहा है—“कमबख्त दण्ड भी सौन्दर्य देखकर जल गया ।” और इस फिकरे पर वह ऐसे गरमाई हैं जैसे सबमुच यही बात रही हो ।

... १

... १

... १

घुप कराना चाहे तो वह दूने जोर से रोने लगती है, दो टॉफी दें तो भी मुने बेग से रोने लगती हैं... और यह तीव्रता हर नई टॉफी के बाद बढ़ती जाती है और बारह तक धाकर नॉर्मल होती है।

हमारी प्रतिम साली की देश की मिट्टी से बहुत प्यार है। मिट्टी खाना प्रिय शौक है उनका। घाप चाहे तो रसगुल्ले, टॉफियाँ, गोलिएँ, खिलौने, लड्डू—कुछ भी दें दे। दुनिया की कोई भी चीज़ लाकर दें दे पर वह कुछ नहीं छुएँगी... उनकी प्रिय वस्तु तो मिट्टी है। जिनकी जीर्ण-शीर्ण काया का राज है ताजी मिट्टी का सेवन, यदि उनको इसको खाने से रोका जाए तो वह नम्बर छ को पूर्ण सहयोग देने लगती हैं रोने में।... अच्छा साहब, इजाजत दें... लियारी करनी है... कल 'उनको' भावने और हमें समुदाय जाना है। ईश्वर से हमारे लिए प्रार्थना कीजिए।

मुहल्ले की ये औरतें नमक-मिर्च लगाकर बात का बतगड़ बना देंगी और भासमान सिर पर उठा लेंगी ।

मैंने उसके प्रश्न का जवाब देने की बजाय कहा—“घाप लीम घन्दर भाइये ना । मि० खान, घापकी बड़ा कष्ट हुआ ।” और मैं बिना उनकी प्रतीक्षा किये स्वयं ही घन्दर की ओर चल दिया जिससे उन्हें भी विवश होकर घन्दर भाना पड़ा ।

मैंने उन्हें अपने कमरे में बैठाया । मेरा दिल बैठ जा रहा था, फिर भी ‘घापड़े का क्या मोल’ । साहस करके पूछा—

“हाँ, तो अब कहिये घाप । मेरा ही नाम चेतन है । क्या बात है ?”

घाप ही यहाँ चिक्कता के बरिष्ठ अध्यापक हैं ?” उसने पूछा । मैंने कहा, “हाँ ।” तो वह बोला—

“जी, बात यह है कि मैं मुबह से ही घापको लाना में हूँ । मैंने पहले ब्राइमरी स्कूल में, फिर मिडिल स्कूल में—गण जगह पूछा । फिर बाद में पता लगा कि घाप तो ह्यावर सेकण्डरी स्कूल में है । प्लस मैं वहाँ पहुँच गया । वहाँ से पता लगा कि घाप वहाँ से निकल चुके हैं तो मैं इन साहब को लेकर यहाँ आया हूँ ।”

वह कहे जा रहा था और मुँह पर एक अनजाना मय ध्यान होना जा रहा था ।

उसने फिर कहा—“मुझे सो. घाई. साहब ने भेजा है, घापको पाने से बुलाया है ।”

उसका अन्तिम वाक्य मुझसे ही मेरे रोषों से खड़े हो गये । उसका एक-एक शब्द हथौड़े की तरह मेरे दिल-ओ-दिमाग पर चोट पहुँचा रहा था । मेरा सारा शरीर पसीने से तर-बतर हो गया था । मैंने मि० खान की तरफ देखा लेकिन वे हमारी बातों की ओर ध्यान दिये बिना ही हमेशा की तरह अपने ही धुन में बँडे पालपिन से अपने दाँत कुदेद रहे थे ।

मैंने हिम्मत करके पूछा—“साखिर बाब क्या है ? मुझे वहाँ क्यों बुलाया है ?”

उसने कहा—“यह तो वहाँ चलकर ही पता लगेगा, साहब । मैं क्या बता सकता हूँ इस बारे में । हाँ, इतना जरूर कह सकता हूँ कि हेड मास्टर ने डाक में एक बहुत बड़ा लिफाफा भेजा था । उसके बाद बागबात देकर साहब कुछ सोचने लगे, और मुझे घापको बुलाने भेजा है । कायद कुछ मामला है ।”

मैंने पूछा, “क्या साप चलना जरूरी है ? मैं कुछ देर बाद वहाँ पहुँच जाऊँ तो कैसा रहे ?”

सब तो यह था कि मैं उसके साथ-साथ नहीं जाना चाहता था ।

तानकर बेधड़क चल सकता है। पर मैं ? मैंने तो कुछ भी नहीं किया। मैं किस बात पर गुमान करूँ या पदचोताव। न चोरी, न डाका, न हत्या, न गबन—कुछ भी तो नहीं। मैं कैसे अपने दिल को समझाता कि मुझे थाने में क्यों बुलाया गया है। मैं आज तक इस गाँव में, स्कूल में, मुहल्ले में एक सम्माननीय और सभ्य व्यक्ति के रूप में जाना जाता हूँ। मैंने कभी अपने जीवन में भी पुलिस-थाना नहीं देखा था। मैं महसूस कर रहा था, कई लोगों की आँखें मुझे घूर रही हैं। वे हजारों प्रश्न करने को धामादा हैं, पर कोई डर से, कोई सम्मान से, कोई लिहाज से, कोई शर्म से, मुझसे कुछ भी नहीं पूछ पा रहा था।

सिपाही आये-थाने, मैं कीड़े-मीड़े चला जा रहा था। न वह मुझसे बात कर रहा था, न मैं उससे।

मेरे मस्तिष्क में उबल-धुबल भव रही थी। बिचारों में ज्वार-भाटे भरे थे। मेरे मानस में तरह-तरह के बिचार थानी के ब्यूले की तरह उठते और विलीन होते जा रहे थे। मुझे खयाल आया, हो सकता है उस दिन एक पुलिस-वाले ने एक खोमचवाने का खोमचा सिर्फ इसलिए उलट दिया था कि बेचारा रास्ते में खड़ा रहकर मुझे खुले पैसे दे रहा था। तब यह था कि पुलिसवाले को उसकी जेब-खर्ची नहीं मिलने से खोमचा उलट देने के कारण पुलिसवाले और उसके बीच कुछ कहा-मुनो हो गई थी। शायद वह बाल धागे बंद गई हो और मुझे भी उसमें फँसा दिया गया हो। नहीं-नहीं! यह नहीं हो सकता है। याद आया, उस दिन उस मजदूर ने उस सेठ का गला इसलिए पकड़ लिया था कि वह सेठ उसे टहराये अनुसार मजदूरी के पैसे नहीं दे रहा था और ऊपर से पालियाँ भी दे रहा था। मजदूर ने सेठ को पराशायी कर दिया। सेठ ने पैसे के बल पर पुलिस को बुला लिया और पुलिस बेचारे मजदूर को पकड़कर ले गई। मैं उस वक्त वहीं खड़ा यह दृश्य देख रहा था क्योंकि मैं उसकी दुकान पर सामान खरीदने गया था। हो सकता है उस सेठ ने मवाह में मेरा नाम लिखा दिया हो।

नहीं-नहीं! यह भी नहीं हो सकता। मोह, याद आया! जल्द वह बात होगी—उस दिन उस लड़की को जयकी समुराल में टोक-पीटकर घायी रात को घर से पक्के मारकर बाहर निहाल दिया था—सिर्फ इन बातों के लिए कि उसका बाप नरीब था और उसने लड़के को दहेज में पड़ी और ट्राजिस्टर नहीं दिया था। और सप्त को रेसमी जोड़ा नहीं पहनाया था। और मैंने एक पड़ोसी के नाते उसे स्टेशन तक ले जाकर टिकट दिखाकर उसके गाँव उसके बाप के घर पहुँचा दी।

पर उसमें मुझे डरने की क्या आवश्यकता है, मैंने कोई पाप बोझें ही किया है।

1. The first line is "The first line is 'The first line is'".

1. பின் ன் பின் பின்

[illegible][illegible]

“।। ପ୍ରଭୁ ଶୁଣି ଶୁଣି ପ୍ରଭୁ

[illegible][illegible]

—111—

“सर्वभूतानां कर्तृत्वं ब्रह्मैवाव्ययम् ।
ब्रह्मैवाकृतं कर्मैवाकृतं फलम् ॥”

— ୧୨୩ —

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

„18 1911“

[illegible][illegible]

(Faint handwritten text at the bottom of the page)

፲፱፻፲፱ ዓ.ም. ጥቅምት ፳፯ ቀን

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
 ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
 ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

10 12 2h 3 11h 112k 1k 11s 2112 1s 12-12 1s 1:2k 3.0

11h 1k 1-1:31h

214 (6) 213/214

७
विश्वम्भरप्रसाद शर्मा 'विद्यार्थी'

कुबड़ी भक्त गलतियों का गठुर दो-डोकर, धकड़कर-भकड़कर चल रही थी और दिखा रही थी कि मेरे कुब नहीं है। कुबी छिपाए अपनी कुब पर छिपाने से बीड़ छिपती नहीं। पाक की भक्त उसको सूँघकर बिना कुदाली सी हाथ जमीन के नीचे से खींचकर निकाल लाती है।

आखिर यमलियत निकल आती है चाहे कितना ही माइम्बर का लठु भारकर उसको दबादो, सानी दस्त बनकर निकल आती है। यह सचफष सुनकर पास खड़े हमारे मित्र महीदय सिकुड़ रहे थे। मैंने हँसकर कहा—“कहो। भाई साहब, दीपक तले धंधेरा कैसे?”

वे बोले, “समझा नहीं।” “अजी! ऐसी सीतल चाँदनी में धूप का ऐनक कैसे? कहीं बत्त्व तो झोंक नहीं है?” पास में कुछ बदतमीज लड़कियाँ धपने फैशनेबुल अधनने कपड़ी में फिम-फिम कर हँस रही थीं। मैंने धूरकर कहा, “आपको क्या तकलीफ है?” सड़ातड़ बोली, “जो आपकी वही हमें।” पास में मेरा एक समझदार मित्र था। उसने कहा, “अबे! किल छिनाल राँदो से तिर-फोड़ी करता है! सारा तिर मयकर भी निकाल देयी। ऊपर से पड़वायेमी डण्डे। खिचवा देंगी सी तार सारे वदन पर आला जायेगा तू सितार बनकर। चल, हट!” वे खिलसिला रही थी।

काना मित्र अपनी मखौल देखकर होठ चाट रहा था। मैंने ताजा व्यग्य कसकर कहा, “कुछ लोग बीड़ों का उपयोग करते हैं स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए, कुछ करते हैं अपने सराब मान पर कुबड़ी भक्त का फैशनेबुल सेबल लगाकर बढ़िया दिखाने के लिए, पर कुछ तो उल्टू चरख करते हैं भक्त-भक्तकर पूरी भक्त।”

पाये चलने पर कुछ जवान लड़के मुँह हिला-हिलाकर अधमरी बातें कर रहे थे। हँसी में लोट-पोट हो लटक रहे थे। हावभाव उनके बहरे थे, सब नाम भपूरे थे। कुछ के धर्चकटे पस्व कान-कटे कुत्ते की तरह भौंक रहे थे। किसी

343

साल पीछे का नमूना अपने गाँव के भोपड़ में रहता है। लट्टु लेकर कूबड़ी फैशन के बारे में लोगों को समझाता है कि यह डायन सबके घर बिगाड़ देगी।

एक दिन यह भी सचमुच एक लकड़ी पर चढ़कर मेरे भोपड़े में आ गई। मैंने चिढ़कर कहा, "कैसा ! बहन, राम-राम !" उसने कहा, "तुमको मेरा परिचय किसने करवाया ?" मैं बोला, "राई, तेरी मूरत बह रही है ! परिचय की जरूरत ही क्या है ?"

मेरे मरते-मरते यह नकदी सब जगह अपनी कुचालों से लोगों को बेडौल, नगे बदन, बदनमूरत बनाकर बेइच्छत करवा देगी। मैंने तो भगवान से भीत माँगी। मुझे तो मिल गई। मेरी छाट के पास बंटे मेरे बूढ़े साथी कह रहे थे कि इसकी तो सुधर गई, अपना स्वा होगा ?

प्राप्त कर लेता है, तब वे महानन्द जी मुहल्ले के किमी चबूतरों पर आगम में बैठकर हमारे भेजे को खार्चें। (फिर मते ही हम उनको अपना भेजा गिलान-लित्ताते वही निदान हो जायें।) जिस प्रकार तर मान मुस्वाडु होता है, उसी प्रकार तर भेजा ही उनको समीष्ट है।

आपने कभी सोचा ही नहीं होगा कि किसी का भेजा खाना बितना दुष्कर बायें है। भेजा खाने के लिए सबसे पहले भेजामारी कम्पनी पटनी है, यर्थात् भेजा-मक्षक हमारे भेजे को सबसे पहले डाकटरी मापा में 'गुन्ध' कर दन है। तदुपरान्त वे भेजापत्नी करते हैं, यर्थात् हमारा भेजा पचान है। मस्टन में पच्-धानु पचाने के धर्म में नाम आता है, यर्थात् वे हमारे भेजे को पच्छी तरह पचाते हैं। जब हमारा भेजा 'पच्' जाता है, तब वही जाकर भेजा-मक्षण होता है।

आप कहेंगे—आखिर यह भेजा-मक्षण कब तक ? हमारे परम रनेही मित्र का कहना है कि जब तक गिलान के बने हुए तार को तरह मामनधाने का भेजा, गुन्-गुन्-गुन् नहीं आतने लग जाय, तब तक भेजा-मक्षण हाथ रहना चाहिए।

आप सोचने होंगे कि मैं आपका भेजा खाट रहा हूँ। बालुन भेजा खाटने की बिया भेजा-मक्षण के बाद हो होनी है। जिस प्रकार माग पीन बाने रखी घाने के पक्षपात् रीता खाटने है, उसी प्रकार भेजा-मक्षण भी भेजा खाने के बाद ही हमारा भेजा खाटने है।

हमारे कई मुक्तिजन मित्र, हमारा भेजा-मक्षण होता हुआ दयाकर बरपाई हो जाते हैं (आपको भी दादद दिया जा गई होगी)। लेकिन सब धानिये, हमें तो अपने भेजे पर नाय है कि एक दृष्टान्तजन रवार्थ-मार्ग भेजा-मक्षक हमारे भेजे का मक्षण कर रहे हैं। जरा साधिये ना, दादद विमर्श रानी पुनस्त है कि बहु हमारा भेजा खाने। कई बार ना हम ही भेजा खाटने की कलाप करनी पड़ती है। अपना भेजा-मक्षण करने के लिए पाद-मान रवार्थ से उनका समुचित साधार करना पड़ता है, तब वही जाकर वे हमारा भेजा-मक्षण करने के 'मुह' में जाते हैं।

आपने कभी भेजा-मक्षण की अनौपचारिक बैठक में भाग नहीं लिया होता (अना आपका ऐसे भाग नहीं है)। दो-चार भेजा-मक्षण किया होता है बैठकर दादद में दुह-दुहरे का भेजा-मक्षण करके जब कि आपका वह भेजा (दाददों) कर भेजापारी का दयाद दुह हो जाता है। इसके बाद और और रवत्, ही उनका भेजा पचव (पचव) मयता है, और जब आपका वह भेजा पच जाता है तो वे भाव दादद में भेजा-मक्षण करके, दादद-दादद पच हुए भेजा का मक्षण दुह कर रहे हैं।



संस्कृति का नया आयाम

ॐ
हरगोविन्द गुप्त

फैशन के इस युग में सुशामद, चाटुकारिता जैसे शब्द पुराने पड़ चुके हैं। 'चमचागिरी' शब्द में जो 'चम' है, वह इन शब्दों में कहाँ! चमचागिरी बड़ी तेजी से सफल जीवन का पर्याय बनती जा रही है। जी हाँ, चमचागिरी सीखिये, यदि आपको जीवन-रूपी 'रेस' में निरन्तर भाग बढ़ते रहना है।

यों यह कला नयी नहीं है। प्राचीन काल में इसे सुशामद एवं चाटुकारिता की संज्ञा से अभिहित किया जाता था। राजदरबारों के सुशामदों दरबारी और चाटुकार कवि इस कला के चमत्कारिक प्रभाव में भली-भाँति परिचित थे। आप ऐसे कवियों की काव्य-रचनाओं के पृष्ठ पलटते जाइये, उनकी यह कला उनकी रचनाओं में मूर्तिमन्त होती नज़र आयेगी। राजा मगधा सम्राट् परले सिरे का मूर्ख ही क्यों न हो, किन्तु इन कवियों की लेखनी की कृपा से वह समस्त गुणों एवं कलाओं का सागर बन गया।

चमचागिरी कलियुग की कामधेनु से कम नहीं है। आप चमचागिरी से होनेवाले लाभों की बिना मत कीजिए। आपका कार्य है—धड़! एवं भक्ति-भाव से चमचागिरी करते रहना। आप चमचागिरी पुरु तो कीजिए, फिर आप देखिये कि इस कला से उद्भूत लाभ आपकी सेवा में स्वयं दौड़े पाते हैं। ज्ञान की प्रत्येक शाखा के कुछ-न-कुछ निर्देशक सिद्धान्त होते हैं। चमचागिरी करते समय आपको भी इसके निर्देशक सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखना होगा और उन पर पूरी ईमानदारी से प्रयत्न करना होगा। यदि आप इस कला के सिद्धान्तों पर ईमानदारी से प्रयत्न कर रहे हैं, तो ईश्वर ने चाहा इससे होनेवाली सम्पूर्ण कृपाओं से आप निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे। प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि चमचागिरी करते समय आप चेहरे पर इस प्रकार का भाव दर्शाइये कि आप जो कुछ भी बात कह रहे हैं, वह पूरी मजिदगी के साथ कही जा रही है। दूसरे, आप अपनी बातों के मध्य समय-समय पर इस बात को प्रत्यक्ष रूप से दोहराते रहिये कि आपके बराबर उनका (प्रधान विनोद चमचागिरी की जा रही है) युग्मबन्धक और कोई है ही नहीं (यों आप अपने

संस्कृति का नया आयाम

हरगोविन्द गुप्त

फौजान के इस युग में खुशामद, चाटुकारिता जैसे शब्द पुराने पड़ चुके हैं। 'चमचागिरी' शब्द में जो 'चलैमर' है, वह इन शब्दों में कहाँ ' चमचागिरी बड़ी तेजी से सफल जीवन का पर्याय बनती जा रही है। जी हाँ, चमचागिरी सीखिये, यदि आपको जीवन-रूपी 'रेस' में निरन्तर भागे बढ़ते रहना है।

यों यह कला नहीं नहीं है। प्राचीन काल में इसे खुशामद एवं चाटुकारिता की संज्ञा से अभिहित किया जाता था। राजदरबारों के खुशामदी दरबारी और चाटुकार कवि इस कला के चमत्कारिक प्रभाव से भली-भाँति परिचित थे। आप ऐसे कवियों की काव्य-रचनाओं के पृष्ठ पलटते जाइये, उनकी यह कला उनकी रचनाओं में मूर्तिमन्त होती नजर आयेगी। राजा भगवा सम्राट् परले सिरे का मुख ही क्यों न हो, किन्तु इन कवियों की लेखनी की कृपा से वह समस्त गुणों एवं कलाओं का सागर बन गया।

चमचागिरी कलियुग की कामधेनु से कम नहीं है। आप चमचागिरी से होनेवाले लाभों की चिन्ता मत कीजिए। आपका कार्य है—धृढ़ एवं भक्ति-भाव से चमचागिरी करते रहना। आप चमचागिरी शुरू तो कीजिए, फिर आप देखिये कि इस कला से उद्भूत लाभ आपकी सेवा में स्वयं दोड़े प्राते हैं। ज्ञान की प्रत्येक शाखा के कुछ-न-कुछ निर्देशक सिद्धान्त होते हैं। चमचागिरी करते समय आपको भी इसके निर्देशक सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखना होगा और उन पर पूरी ईमानदारी से प्रयत्न करना होगा। यदि आप इस कला के सिद्धान्तों पर ईमानदारी से प्रयत्न कर रहे हैं, तो ईश्वर ने चाहा इससे होनेवाली सम्पूर्ण कृपाओं से आप निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे। प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि चमचागिरी करते समय आप चेहरे पर इस प्रकार का भाव दर्शाइये कि आप जो कुछ भी बान बह रहे हैं, वह पूरी संजीदगी के साथ कहाँ जा रही है। दूसरे, आप अपनी बातों के मध्य समय-समय पर इस बात को परोक्ष रूप से दोहराते रहिये कि आपके बराबर उनका (धर्मान् जिनकी चमचागिरी की जा रही है) पुर्नचिन्तक और कोई है ही नहीं (यों मान माने

ये साहब लखनऊ के किसी बिगड़े नवाब एवं साब-ही-साब किसी मूर्धन्य विद्वान से कम नहीं। आचार्य शुक्ल एवं किसी राजकुमार की श्रेणी में इन साहब को बिठला देने से इतना तथाकथित शुभचिन्तकों को 'कुछ' समय-समय पर प्राप्त होता रहे, तो इतना लाभ उठाने से भी मित्रगण क्यों चूकें ? समय का यही तो तकाबा है !

मुझे एक ऐसे महानुभाव के सम्पर्क में घाने का अवसर प्राप्त हुआ जो अपने को स्वामिमन्त्रित, कर्तव्यविरायणता एवं ईशानदारी का भनीहा मानते हैं। समय-समय पर ये महानुभाव उपदेश भी भगडते रहते हैं। इनका यह रिवाज रहा है कि बाँस बाहर रहें तो प्रतिदिन दफ्तर से देर से पहुँचा जाय (समय पर पहुँच जाने से शायद उनकी तौहीन हो)। और जब बाँस मुख्यालय पर हो तो समय से घटा-भाधा घंटा पूर्व पहुँचकर अपने अन्य साधियों के सम्बन्ध में टीका-टिप्पणी करने के अवसर का लाभ उठाया जाय। बाँस के सामने भावश्यकता से अधिक व्यस्त रहने का उपशम और बाँस की अनुपस्थिति में नियमित कार्यक्रम की उपेक्षा—ये इन महानुभाव की प्रमुख चारित्रिक विशेषताएँ हैं। घरने बाँस के एकमात्र अथवा सर्वाधिक शुभचिन्तक हैं, और इन्हें स्वप्न में भी उनके हित की चिन्ता बनी रहती है। वस्तुतः बाँस इनके लिए माई-बाप से कम नहीं।

हाँ, तो बन्धुप्रो ! अब घान स्वयं ही बिचार कर लीजिए कि बमचागिरी की कला कितनी बमरकारिक एवं फलदायिनी है। यह घातादीन के बिनाप से किसी रूप में कम नहीं। जबिबर रहीम न जाने किस मामूिमिजत से यह लिख गये—

निदरु निदरे राखिये, घानव कुटी छवाय ।

बिन पानी साबुन बिना, निर्मित करे सुभाय ॥

यदि ये बमचागिरी की कला में निष्णात हुए हों तो इन पत्तिया को न लिखकर ये कदाचित् निम्न पत्तिया लिखकर घागे घानेवाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते—

बमचा निदरे राखिये, घानव कुटी छवाय ।

बिन हल्दी घों' पिटकरो, हषित करे सुभाय ॥

तो अब घापने एक अच्छा 'बमचा' बनने का निश्चय कर ही लिया होगा। घात्र से ही प्रवास प्रारम्भ कर दीजिये, क्योंकि शुभ-कार्य में देर की आवश्यकता नहीं। प्रारम्भ में यदि घापकी कुछ क्षमकला भी हाव गये, तो निरास होने की आवश्यकता नहीं। यह तो घापकी परीक्षा है। यदि घाव निदरु एवं तल्लीनतापूर्वक इस कला को सीखने में जुट गये, तो निदरु रूप में सकलता घापके चरण चूमिगी और घाव एक 'घादर्य' बमचा बनने का ध्येय प्राप्त कर सगंये।

